सस्ती-प्रकीर्ण-माला

स्वामीजी का बलिदान

और

हमारा कर्तव्य

लेखक

पं० हरिभाऊ उपाध्याय

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल

अजमेर

१९२७

हिन्दी प्रेमियों से अनुरोध

इस सस्ता-मंडल की पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ-संख्या और मूल्य पर ज़रा विचार कीजिये। कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं। मण्डल से निकली हुई पुस्तकों के नाम तथा स्थायी ग्राहक होने के नियम, पुस्तक के अंत में दिये हुए हैं, उन्हें एक बार आप अवश्य पढ़ लीजिये।

अर्घ्य

वीरों की गति जीना और सिखाया मरना।
धीरो की मति सिखा गये संकट से लड़ना॥
दीनो के हित सबल बाहु सत्वर फैलाना।
सेवा के हित तन मन, धन बलि-दान चढ़ाना॥

हे गुरुकुल के गुरो! बलि-स्मृति अमर स्फूर्ति तव कर्म्य है।
हे श्रद्धा के पुत्र! व्यथा का यह श्रद्धायुत अर्घ्य है॥

हरिभाऊ उपाध्याय

खादी आश्रम
अमरसर,
श्रद्धानन्द दिन

आवश्यक वक्तव्य

उपाध्यायजी की यह पुस्तक पाठकों के हाथों में ऐसे समय पहुँच रही है जब कि उसकी बहुत आवश्यकता है। यह कहना कठिन है कि इनके सभी विचारो से पाठक सोलहों आना सहमत होंगे परन्तु यह तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि इसमें पाठकों को काफ़ी विचार-सामग्री मिलेगी।

अब्दुलरशीद ने पुलिस की तहक़ीक़ात में स्वामीजी का ख़ून करना स्वीकार किया था। इस कारण लेखक ने और सब लोगों की तरह इस पुस्तक में उसे स्वामीजी का ख़ूनी मान कर अपने विचारों की स्थापना की है। परन्तु कानून की परिभाषा में कोई अभियुक्त तब तक अपराधी करार नहीं दिया जा सकता जब तक कि न्यायालय उसे अपराधी करार न दे दे। ऐसी अवस्था में पाठक तब तक इस पुस्तक में अब्दुलरशीद को अपराधी नहीं, अभियुक्त समझें।

प्रकाशक

विषय-सूची

विषय

लागत का ब्योरा

कागज़	६६)
छपाई	१०२)
बाइंडिंग	१२)
चित्र	६)
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	९०)
	२७६)

कुल प्रतियाँ ११००

लागत मूल्य प्रति पुस्तक ।)

स्वामीजी का बलिदान

और

हमारा कर्तव्य

अर्थात्

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या

१—प्रास्ताविक

स्वामीजी का खून—

पू० स्वामी श्रद्धानन्दजी के खून ने सारे देश में खलबली मचा दी है। हिन्दू जोश मे हैं और मुसल्मान चक्कर मे पड़ गये हैं। इसके परिणाम के विषय मे तरह तरह के अनुमान बँध रहे हैं। हिन्दुओ और मुसलमानो पर इसका तात्कालिक असर जुदा जुदा हुआ है। हिन्दुओं का एक दल इस बलिदान पर मुग्ध है, खुश है, अब्दुल रशीद को धन्यवाद और स्वामीजी के उत्तराधिकारियो को बधाइयां दे रहा है; दूसरा दल दुखी है—जाहिरा में भले ही दबी ज़बान से खुशी में शामिल हो जाता हो। एक वर्ग

इसका उपयोग हिन्दू-मुस्लिम एकता को मजबूत और वास्तविक करने में करना चाहता है और दूसरा हिन्दुओं की ताक़त बढ़ा लेने, शुद्धि-संगठन का जोरों से प्रचार करने तथा आर्य-समाज के मतो को फैलाने मे। कुछ बिगड़-दिल ऐसे भी सुने जाते हैं जो स्वामीजी के खून के बदले किसी मुसलमान का खून करना उचित समझते हैं और, इस तरह अपने खयाल के अनुसार दुनिया को दिखा देना चाहते हैं कि मुसलमान बिगड़े-दिलों का मुक़ाबला हम इस तरह भी कर सकते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो हिन्दू-मुस्लिम-एकता की मौक़ा-बे-मौक़ा दुहाई तो देते हैं; पर दिल मे, और दिल से, चाहते हैं और उत्सुक हैं कि कब मुसलमानों का नामोनिशान हिन्दुस्तान से मिट जाय। उन्हें इस घटना से मुसलमानो के ख़िलाफ़ जहर उगलने और हिन्दू-मुसलमानों में फूट बढ़ाने का पूरा-पूरा मौक़ा मिल गया है। इसी तरह मुसलमानों में भी जो राष्ट्रीय विचार के या धर्म के मामलों में उदार खयाल के लोग हैं, उन्होंने अब्दुल रशीद की इस कातिल करतूत को बुरा कहा है और कहा है कि इसने इस्लाम को नुक़सान पहुँचाया है। उन्हें उसकी इस हरकत पर अफ़सोस है। दूसरे दल के लोग 'ग़ाज़ी' कह कर खूनी का गौरव बढ़ा रहे हैं और मानते हैं कि उसने खुदा का या पैग़म्बर साहब का हुक्म पूरा करके इस्लाम की भारी ख़िदमत की है। जो लोग हिन्दुस्तान में मुसलमानों का राज्य क़ायम करने के सपने देखा करते हैं और हिन्दुओं को उसका काँटा समझ रहे हैं, वे मुसलमानों में मज़हब जोश फैलाने, मुसलमानों की तादाद बढ़ाने और हिन्दुओं को

कमज़ोर कर डालने के मनसूबे बाँध रहे हैं। हिन्दुस्तानी ईसाई लोग आमतौर पर इस काण्ड की निन्दा करते हुए पाये जाते हैं। अँगरेज़ राज-कर्मचारियो मे सुख और दुःख दोनो तरह के भाव दिखाई देते है। अंगरेजी सरकार संभव है, इस घटना से खुश होगी, अगर इसके बदौलत हिन्दू-मुस्लिम-एकता सदा को लिए असंभव वस्तु हो जाय।

एकता—कुदरत का धर्म है—

मगर सरकार को और उसको तरह स्वार्थी तथा विघ्न-सन्तोषी हिन्दू-मुसल्मानो को अन्त मे निराश होना पड़ेगा; क्योकि आज ऊपर-ऊपर चाहे हिन्दू-मुसल्मानो मे फूट की आग फैलती हुई दिखाई देती हो, स्वामीजी की हत्या चाहे उसमें घी का काम देती हुई नज़र आती हो, पर भीतर देखने वाले तुरन्त जान लेंगे कि इस में दोनों जातियो का मैल और बुराई भस्म हो रही है और एक दिन दोनो जातियाँ प्रेम, सद्भाव और एकता से मिल-जुल कर स्वराज्य की लड़ाई में अपना तन-मन-धन स्वाहा करने को तैयार हो जायँगी। क्योकि, एकता कुदरत का धर्म है। कुदरत का हुक्म है कि मनुष्य ही नहीं, प्राणिमात्र एकता से रहे। बारीक नजर से देखेंगे तो हमे पता चलेगा कि जीव-मात्र एकता की ओर दौड़ता जा रहा है। विविधता, विरोध, प्रकृति का खेल है; और एकता, सामञ्जस्य प्रकृति के अंदर छिपा हुआ सत्य है। फिर हिन्दू और मुसलमान दोनों के स्वराज्य-वादी लोग, जिनकी संख्या, अपना अपना राज्य कायम करने का पागल स्वप्न देखने

वाले हिन्दू-मुसल्मानों से ज़रूर ज़्यादह है, यह मानते हैं कि उन दोनों महान् जातियों के एक हुए बिना स्वराज्य नामुमकिन है, और स्वराज्य का तो वे बीड़ा ही उठाये बैठे हैं। अतएव उनकी कोशिशें जान में—अनजान में, मौक़ा-बे-मौक़ा, इसी दिशा में होंगी जो कभी न कभी अपना रंग लाये बिना न रहेंगी। जो हिन्दू-मुसलमान आज शुद्धि-संगठन या तनज़ीम-तबलीग़ के द्वारा अपनी अपनी जातियों को मज़बूत और बड़ी बनाना चाहते हैं, उनमें भी बहुतेरे लोग ऐसे हैं जो सच्चे दिल से एकता के हामी हैं और इन कामों के उसी हद तक समर्थक हैं जिस हद तक वे राष्ट्रीय एकता को मज़बूत बनाते हों या उसमें बाधक न होते हों। अतएव मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि दोनों जातियों में बहुमत आज भी एकता चाहने वाला है—फिर भले ही आज उनसे उसके लिए उसी सरगर्मी से काम न हो रहा हो जो कि असहयोग के दिनों में उन्होंने दिखाई थी। दूसरे, धारा सभाओं के पिछले चुनाव में साम्प्रदायिकता या जातिगत स्वार्थों की दुहाई देने वाले देश-हितैषियों ने उसके दुष्परिणामों को—उसमें फैलने वाली कटुता को, उभड़नेवाली नीच मनोवृत्तियों को, जो कि जाति और देश की स्थायी हानि है—अच्छी तरह देख लिया है और सफलता ने उनके गले में जैसी कि चाही गई थी, वरमाला नहीं डाली है। इधर, सुना है, स्वामीजी के उत्तराधिकारियों ने राष्ट्रीय महासभा को यह आश्वासन दिलाया है कि स्वामीजी महाराज के बलिदान के द्वारा हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य मज़बूत हो, यह हमारी भी कामना है। उधर मुस्लिम लीग के इसी वर्ष जल्से के सभापति

की वक्तृता भी अब की धर्मान्धता और कट्टरपन से बरी है। इन तथा और ऐसी ही बातो को सब तरह तौलते और विचारते हुए कोई भी मनुष्य बरबस इसी नतीजे पर पहुँचेगा कि इस अंधेरे मे भी प्रकाश आ रहा है—एकता अपना जोर भीतर ही भीतर ऐसा लगा रही है कि फूट उबल उबल कर, उफन उफन कर, बाहर निकल रही है—जिस तरह बुखार शरीर को नीरोग और दोष-रहित कर देने वाला कुदरत का साधन है, उससे अन्त में जीवनी शक्ति बढ़ती है—उसी तरह यह आज की कटुता, फूट, मनोमालिन्य कल की एकता की अवाई के घोषणा-पत्र हैं।

जो लोग इस रहस्य को जानते है और उसको देखने की ऑखें जिन्हे हैं, जो किसी चीज को ऊपर ही ऊपर नही, भीतर भी, तह में भी, देख सकते हैं वे अक्सर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए पाये जाते हैं—ईश्वर जो करता है भला करता है, भले के लिए करता है। मांगल्य के इस सिद्धान्त पर श्रद्धा रखना ही ईश्वरश्रद्धा या आस्तिकता है। जब भारत के अधिकांश लोग मानते है कि एकता अच्छी चीज है, एकता हो, उसके बिना, स्वराज्य नहीं मिल सकता, जब अपनी अपनी शक्ति भर, अपने अपने ढंग से, वे मौका-बे-मौका उसके लिए कोशिश भी करते हैं, जब कि दुनिया का रुख विरोधो, संकुचितताओ को कम कम करके एकता और सन्मिलन बढ़ाने की ओर है, जब कि ईश्वर खुद, प्रकृति स्वयम्, अपने बन्दो को तथा अपनी रचना की विविधता और विरोध को एकता और मेल की तरफ़ खींच रहे हैं—तब हिन्दू-मुस्लिम-एकता में अविश्वास करना, या उससे

निराश होना ईश्वर से इन्कार करना है, अपनी और दुनिया की हालत को देखते हुए भी न देखना है, जानते हुए भी न जानना है।

हम कुदरत की सहायता क्यों न करें ?

कुदरत तो अपना काम कर ही रही है और करेगी ही; पर क्या हम अपनी तरफ़ से भी उस एकता को बढ़ाने, उसका वास्तविक रूप समझ लेने, उसका सच्चा और सरल रास्ता जान लेने, खतरों से अपने को बचाने और सावधान रहने का कुछ उद्योग न करें ? अपनी तरफ़ से भी कुदरत की सहायता न करें ?— खास कर ऐसे अवसर पर, जब कि हिन्दू और मुसलमान दोनों में विचारों, भावों और चर्चाओं का तूफ़ान सा आ रहा है, जब कि दोनों जातियों में एक ऐसा दल बन गया है, फिर वह कितना ही छोटा क्यों न हो, जो एक दूसरे को घृणा, अविश्वास और भय की दृष्टि से देखता है, जिसे एक दूसरे के कामों को बुरी और शक की ही नजर से देखने की आदत पड़ गई है, जिसके धर्म, जाति, स्वराज्य, राष्ट्र और मानव-कर्तव्य-सम्बन्धी विचार सुलझे हुए नहीं हैं, और भी इस बात की ज्यादह जरूरत है और उसके लिए यही सब से अच्छा अवसर है, जब कि इन विषयों पर गहरा प्रकाश डाला जाय और लोगों के भ्रम, शंका, कुतर्क आदि का यथोचित निराकरण किया जाय। हम हिन्दुओं के लिए तो और भी ज्यादह जरूरत इस बात की है कि वे इस अवसर पर अपने कर्तव्य को ठीक ठीक समझ लें।

अपना अनधिकार—

मेरा ख़याल है कि मैंने हिन्दू-मुस्लिम-समस्या के प्रायः

प्रत्येक पहलू पर, अपने ढंग पर और अपने तौर पर बहुत कुछ विचार किया है और मेरे अपने कुछ मजबूत ख़याल इस विषय में बन गये हैं। स्वामी जी महाराज की हत्या के बाद स्वभावतः कुछ मित्रों से हत्या के परिणाम, देश का कर्तव्य, एकता का स्वरूप और साधन, हिन्दुओ का कर्तव्य आदि विषयो पर चर्चा हुई। उनसे कुछ भाइयो की उलझनें सुलझी हुई दिखाई दी। उन्होने आग्रह किया कि मै इस अवसर पर अपने विचारो को ज्यो का त्यो जनता के सामने उपस्थित करूँ। मेरे दिल से भी आवाज़ उठी कि अब चुप साध कर बैठे रहना गुनाह है। मैं अपनी ओछी शक्तियॉ और अल्पज्ञान के साथ इस महान् और उलझे हुए विषय पर कलम चलाने का साहस कर रहा हूँ। अपनी अयोग्यता और अनधिकार के ख़याल से कलम संकोच और झिझक के साथ उठी है। आज़ादी, स्वराज्य, एकता और प्रेम के ईश्वरीय भाव मेरे सहायक होंगे।

पहले मनुष्य, पीछे हिन्दू—

मै अपने को सब से पहले मनुष्य, फिर हिन्दुस्तानी, फिर हिन्दू, फिर ब्राह्मण मानता हूँ। मेरे नज़दीक इन चारों बातो में न तो किसी प्रकार की विसंगति है, न विरोध। मेरे विचार में हिन्दू-धर्म मे मनुष्यत्व के पूर्ण विकास के लिए काफ़ी जगह है। इस लिए उसके मुकाबले मे दूसरे मजहब मुझे नही जँचते; पर मै उनको उसी इज्ज़त की निगाह से देखता हूँ, जिससे मैं चाहता हूँ कि वे मेरे धर्म को देखें। पूर्वोक्त विचारक्रम मेरी इसी विचार-

शैली और कार्य-नीति को प्रकट करता है कि मैं किस भाव और किस चीज को किसके मुक़ाबले में कितना महत्व देता हूँ फिर भी यह निबंध मैंने प्रधानतः हिन्दू की हैसियत से, प्रधानतः हिन्दुओं को ध्यान में रख कर, उन्हीं के लिए लिखने का प्रयत्न किया है। जल्दी में आवश्यक साहित्य-सामग्री, साधनों और योग्यता के अभाव में, इसका त्रुटि-युक्त और दोष-पूर्ण होना स्वाभाविक है। सम्भव है, इसमें कहीं जानकारी, आदि सम्बन्धी भूलें भी हों; पर जिन सिद्धान्तों और नीतियों की विवेचना इसमें की जाने वाली हैं, उनके सम्बन्ध मे मेरे विचार अटल, निर्भ्रान्त और सिद्ध हैं, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। अपनी भूल और अनभिज्ञता को समझने और दूर करने के लिए पाठकों और आलोचकों को मैं हमेशा तैयार मिलूँगा।

२—हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न क्या है ?

हिन्दू और मुसलमान दुनिया की दो महान् जातियाँ है—हिन्दू बहुत प्राचीन जाति है—आदिम काल में उसका नाम आर्य था। महर्षि दयानन्द ने फिर इसी नाम को प्रचलित करना चाहा था। उनके मतावलम्बी आर्यसमाजी कहलाते हैं—अब भी 'आर्य' शब्द सारी हिन्दू-जाति ने अपने लिए ग्रहण नही किया है। हिन्दू-जाति मे सिक्ख, जैन, बौद्ध, आर्य, और सनातनी, इन सभी संप्रदायो की गणना होती है। आर्य और सनातनी वेदो को अपना सब से बड़ा धर्मग्रन्थ मानते हैं, सिक्ख ग्रन्थसाहब को, जैन भगवतीसूत्र को, और बौद्ध धम्मपद को। आर्य दयानन्द को, सनातनी अवतारों को, सिक्ख नानक को, जैन महावीर को और बौद्ध गौतम बुद्ध को अपने प्रवर्तक या महान् पुरुष मानते हैं और उनके रचे ग्रन्थो और किए कार्यों को अपने लिए पथदर्शक मानते है। हिन्दू-धर्म-साहित्य मे श्रीकृष्ण भगवान् की गीता एक ऐसी पुस्तक है, जिसे सब हिन्दू—और हिन्दू ही क्यों, संसार के सब धर्मों के विचारशील लोग—बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। मेरी राय मे सारी हिन्दू-जाति का धर्मग्रन्थ यदि कोई हो सकता है तो वह है श्रीमद्भगवद्गीता—यह कहना शायद इस समय बहुत बड़ा साहस, और समय से बहुत पहले कही गई बात, होगी कि सारी दुनिया के मजहबो का अथवा भावी विश्व-धर्म का कोई आधारुरूप ग्रन्थ आज दुनिया मे उपलब्ध है, तो वह है गीता।

हिन्दुओं की संख्या इस समय भारतवर्ष में कोई २१ करोड़ है। जापान, चीन, तिब्बत, ब्रह्मदेश आदि के बौद्धों की संख्या यदि जोड़ी जाय तो हिन्दू दुनिया में ७० करोड़ हो जाते हैं।

मुस्लिम-जाति—

इस्लाम का जन्म दुनिया के इतिहास में हुआ। हजरत मुहम्मद इस्लाम के जन्मदाता और मुसल्मानों के लिए ईश्वर के प्रतिनिधि हैं। कुरान उनका सब से मान्य धर्म-ग्रन्थ है, जो कि पैगम्बर साहब के उपदेशों और आज्ञाओं का संग्रह है। इनमें कई फिरके हैं—पर सब कुरान और मुहम्मद साहब को एक सा मानते हैं! इनकी तादाद हिन्दुस्तान मे ७ करोड़ और बाहर ४० करोड़ है। इस्लाम का जन्मस्थान अरब है।

मुसल्मानों का भारत पर हमला और धर्म-प्रचार—

जब मुसल्मानों का आवागमन हिन्दुस्तान मे शुरू हुआ तब यहाँ हिन्दू खूब फल-फूल रहे थे। भारत की सरसब्जी ने ही मुसल्मान आक्रमणकारियों को इस देश में खींचा। सदियों तक मुसल्मानों का राज्य इस देश में रहा। हिन्दुओं से उनकी लड़ाइयाँ हुई। अँगरेजी राज होने तक हिन्दू-मुसल्मानों की कई स्व त्र रियासतें यहाँ थीं। मुसल्मान राजाओं ने अपने मजहब के लोगों की तादाद बढ़ाने के लिए हिन्दुओं पर बड़ा जुल्म किया, उन्हें तलवार के बल जबरन् कल्मा पढ़ाया। यह कड़वी स्मृति हिन्दू अब भी भुलाये नहीं भूल पाते।

हिन्दुओं और मुसल्मानों का संबंध शुरू होता है आक्रमण-

कारी और प्रतिकारी के रूप मे और उसका अन्त होता है एक देश के समान राजा और प्रजा के रूप मे। मुसलमानो के आक्रमणों का मुख्य उद्देश होता था इस्लाम का फैलाव। इसका सब से बड़ा साधन और प्रमाण वे मानते थे दूसरी जातियो और मज़हब के लोगो को इस्लाम की दीक्षा दे देना।

एकता की भावना और कोशिश—

जैसे जैसे मुसलमानो का प्रभाव हिन्दुस्तान मे बढ़ता गया और वे यही जम कर रहने लगे तैसे तैसे हिन्दुओ और मुसलमानो के नेताओ के दिल मे दोनो जातियो को एकता के सूत मे बॉधने का ख़याल उठने लगा। यह क़ुदरती बात थी। इतने विशाल देश मे, ऐसी दो प्रबल जातियो का परस्पर विरोधी बने रहना समाज-तत्व, मानव-स्वभाव और कुदरत के धर्म के खिलाफ़ था। नानक, अकबर, कबीर ने दोनों जातियो के समान गुणो के विकास और दोनों के धर्मों के परस्पर अनुकूल सिद्धान्तों के प्रचार पर ज़ोर देकर दोनों को एक दूसरे के नज़दीक लाने की कोशिश की, पर नानक के प्रयत्नो का अन्त सिक्ख-संप्रदाय के उदय मे और कबीर की प्रवृत्ति का फल कबीर-पन्थ की सृष्टि के रूप मे हुआ। अकबर का 'दीने इलाही' कली ही मे मुरझा गया। पीछे औरंगज़ेब की धार्मिक क्रूरताओ ने हिन्दू-मुसल्मानों के द्वेष की जड़ को बहुत मज़बूत कर दिया, यह तक कि ऐसा भाव दृढ़ हो गया कि हिन्दू-मुसल्मान दोनो, मानो कुदरती तौर पर एक दूसरे के ख़िलाफ़ जन्मे हो।

संस्कृतियों का लेन-देन—

इन दोनों जातियों के संघर्ष और सम्पर्क से भारतवर्ष को लाभ हुआ या हानि, यह कहना बहुत कठिन है। हिन्दुओं के हिन्दुस्तान की दृष्टि से देखें तो हिन्दुओं के सुख-साम्राज्य में एक बाधक और हिस्सेदार शक्ति खड़ी हो गई; और मानव-वंश के हिन्दुस्तान की दृष्टि से देखें तो, कुदरत के नियम के अनुसार, दोनों के धर्म और संस्कृति के लेन-देन से दोनों को, और समष्टि रूप से सारी मानव-जाति को, लाभ ही पहुँचा। प्रकृति का कोई काम मनुष्य के अहित के लिए नहीं होता। मुसलमानों के एक ईश्वरत्व, भ्रातृभाव के सिद्धान्तों का असर हिन्दुओं पर और हिन्दुओं के वेदान्त-सिद्धान्तों का असर मुसलमानों के सूफ़ी-मत पर हुआ। मुसलमानों ने अपनी रसिकता और कला-कौशल, काव्य, संगीत, चित्रकला और स्थापत्य से भारत की ललित कलाओं को पुष्ट किया और हिन्दुओं ने अपनी सात्विकता का अंश उन्हें दिया। फिर भी यह नहीं कह सकते कि इन दोनों जातियों और संस्कृतियों के सम्पर्क का ईश्वरीय हेतु पूरी तरह सफल हो गया। हिन्दुस्तान में अब तक न तो पूरी तरह इस्लाम संस्कृति का ही सिक्का जम पाया है, न हिन्दू-संस्कृति का ही बोल बाला हो पाया है, न दोनों के मिश्रण से तीसरी, दोनों को बढ़ाने और नजदीक लाने वाली, संस्कृति का ही निर्माण हो पाया है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि हिन्दू-संस्कृति इतनी प्राचीन होते हुए भी मुस्लिम संस्कृति के पहले की भारत-निवासियों की संस्कृतियों को अपनाने की शक्ति प्रदर्शित

करते हुए भी, क्यों इस नवागत मुस्लिम संस्कृति को पूरी तरह न अपना पाई ? क्यों वह अब तक मुसल्मानो से दूर दूर रहती है ? ऐसा मालूम होता है कि इस्लाम प्रबल वेग और खूनी हथियारों को लेकर भारत मे आया, और इसलिए शायद हिन्दू-संस्कृति उसे अपनाने से हिचकती रही, उसे शंका रहती रही कि उसे अपनाने के मोह और यत्न में कहीं मैं ही अपना अपनापन न खो बैठूं। शायद इसीलिए वह अपनेपन की रक्षा करती हुई बैठ रही—मुस्लिम संस्कृति से समझौता करना उसे महँगा सौदा मालूम हुआ ! उसका यह सन्देह या सावधानता उसके इस्लाम, मुस्लिम-जाति और संस्कृति संबंधी अपने विरोध का प्रतिकारक या असहयोगात्मक अथवा बहिष्कारात्मक विधि-निषेधो की कैफ़ियत देती है। मुसल्मान राजाओं ने अपनी ओर से हिन्दुओं की लड़कियाँ लेने, उनसे खान-पान का संबंध बढ़ाने अर्थात् सामाजिक संबंध जोड़ने की कोशिशे कीं; पर हिन्दुओं ने उनका प्रतिकार ही किया, क्योंकि मुसल्मान इस संबंध के द्वारा हिन्दू-भारत को मुस्लिम-भारत बनाने की जितनी महत्वाकांक्षा रखते थे, उतनी शायद, दोनो संस्कृतियों के मिलाप और उससे दोनो जातियो के अस्तित्व को न हिलाते हुए एक सामान्य संस्कृति निर्माण करने की अकांक्षा न रखते थे। मुसल्मानो की इसी आक्रामक प्रवृत्ति का जवाब था हिन्दुओं की असहयोगात्मक प्रवृत्ति। हिन्दू भी इतने उदार चेता तो शायद न रहे हों कि जान-बूझ कर, दोनों संस्कृतियों के मिलाप के भाव से प्रेरित होकर, अपनी संस्कृति मे आवश्यक संशोधन या परिवर्तन करें। जो हो;

यह निर्विवाद है कि मनुष्य के हृदय में प्रायः अज्ञात-रूप से बसने वाली समाजशीलता—मिल कर रहने की इच्छा—ने अपना काम किया ही—कुदरत ने अपना धर्म निबाहा ही—जिसके फल स्वरूप आज हिन्दू और मुसल्मान दोनों एकता का ख़याल मन मे ला और जमा सके हैं, पिछले पाँच-सात बरसों में उसके लिए दिलो जान से कोशिशें हुई हैं और आज भी कुदरत उन्हे कड़वी घूंटें पिला पिलाकर, ठोकरों और थपेड़ों से सीधा करती हुई उसी ओर ले जाने की चेष्टा कर रही है।

फूट में अँगरेज़ी राज का हिस्सा—

भारतीय इतिहास के मुसल्मान-काल में हिन्दू और मुसल्मान, दोनों अपनी रक्षा और एक-दूसरे का विरोध करने में हर तरह आज़ाद थे। इन से दोनों अपने मनोभावों के अनुसार अपनी शूरवीरता का उपयोग कर पाते थे। फलतः उस समय उन्हें एक दूसरे से इतना भय, एक दूसरे पर इतना अविश्वास, संशय न था जितना कि आज, अँगरेजी राज्याधीन भारत में, देखा जाता है। डर, अविश्वास, संशय, गुलामी के चिह्न हैं, कमज़ोरी के सबूत हैं। अँगरेजों ने हिन्दुस्तान को आपस की—हिन्दू-हिंदुओं की और हिन्दू-मुसल्मानों की—फूट से भरा पाया। उसको जिस तरह बन पड़े कायम रखना सहज ही उनके साम्राज्य को कायम रखने और पनपाने का मूलमंत्र हो गया। उनके धार्मिक बातों मे उदासीनता रखने के औदार्य के ढोंगने, हिन्दू और मुसल्मानों को छोटी-छोटी सामाजिक या व्यावहारिक बातों को धर्म का उच्च स्वरूप दे देकर, उनके लिए अख़बारों में, सभाओं

में तू तू-मैं मैं करने का, चुपके चुपके एक-दूसरे के खिलाफ़ ज़हर फैलाने का, और कहीं कही दंगे-फ़साद, खून-खराबी कर बैठने का रास्ता खुला कर दिया। जब तक, जहाँ तक और जिस तरह उसके स्वार्थ की पूर्ति होती है, वह इन रास्तो में उन्हे बामिजाज़ चलने देती है; कुछ लोग तो उस पर यह भी इल्ज़ाम लगाते है कि वह ऐसे झगड़े और मनमुटाव पैदा भी कराती है और इन में एकता होने के मौक़ों को नज़दीक नही आने देती। कभी एक दल को, कभी दूसरे को पुचकार कर वह दोनो मे अनुचित और बुरी स्पर्द्धा और उसके फल स्वरूप द्वेष की आग सुलगाती रहती है; और छोटी बुद्धि, छोटे भाव, ओछे विचार और गंदा स्वार्थ रखने वाले हिन्दू-मुसलमान उसके शिकार हो कर दोनो की गुलामी को मज़बूत बना रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह कि मुसलमान-काल की अपेक्षा इस अँगरेज़ी-काल में हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न ज्यादह जटिल हो गया है और दोनो की गुलामी न उस उलझन को अच्छी तरह समझने देती है, न समझने के बाद उसे सुलझाने के राजमार्ग पर चलने ही देती है। यद्यपि मुसलमान-काल से आज एकता की आवश्यकता अधिक स्पष्ट और निश्चित हो गई है, तथापि उसके साधन, उसकी स्वतंत्रता पहले से बहुत कम, बहुत विवादास्पद और इसीलिए उसकी सफलता बहुत श्रमसाध्य हो गई है, एवं उसके लिये बहुत सावधानी, दूरदर्शिता, व्यवहार-चतुरता, धीरज, सहिष्णुता और दानाई की ज़रूरत है।

एकता-स्वराज्य का प्रश्न—

अँगरेजी राज्य और पश्चिमी शिक्षा की एक देन भारतवर्ष

को अवश्य माननी चाहिए। वह है विदेशो के और विदेशी शासनादर्शों के तथा शासन-व्यवस्थाओ के अध्ययन का अवसर भारतवासियों को मिलना। इससे उन्हें राष्ट्रीयता, स्व-शासन, स्वतंत्रता, स्वराज्य, प्रातिनिधिक शासन-व्यवस्था, आदि की व्यापक और सार्वदेशीय कल्पना और धारणा मिली, या दृढ़ अथवा विकसित हुई। इसके प्रकाश मे भारतवासियो ने स्वराज्य के आदर्श को पहचाना और उसके लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता को अपने पूर्ण, वास्तविक और आवश्यक रूप मे देखा। अतएव मुसलमान-काल मे चाहे हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न, संस्कृतियों के आदान-प्रदान का प्रश्न रहा हो, सामाजिक सुविधा-असुविधा का प्रश्न रहा हो; आज वह स्वराज्य का, स्वाधीनता का महाप्रश्न हो बैठा है। जिसने हिन्दू-मुसलमानो के इस प्रश्न को नहीं समझा, उसने न तो स्वराज्य को समझा है और न हिन्दुओं के वर्तमान और भविष्य को ही पहचाना है।

३—एकता के वर्तमान प्रयत्न

जातिगत संस्थायें और जातिगत भाव—

अँगरेजों के राज्य की भारत में स्थापना और बढ़ती के साथ ही साथ हिन्दू-मुसलमान में परस्पर भय, अविश्वास, संशय के भाव बढ़ते गये। जहाँ भारत के विशाल-दृष्टि नेताओं ने स्वराज्य के आदर्श को पहचाना, राष्ट्रीय एकता के मूल्य को समझा, राष्ट्रीय महासभा की स्थापना की, तहाँ दोनो जातियों के छोटे-छोटे और तंग ख़याल के अथवा अपनी अपनी जातियो की सुरक्षा के लिए, अधिक चिन्तित और शंकित नेताओ ने कुछ तो पुरानी दुश्मनी की स्मृति से, कुछ भावी स्वराज्य में अपनी अपनी जातियो की स्थिति की संदिग्ध कल्पना से, बेचैन हो, कुछ अपने अपने समाजों की बुराइयाँ दूर करने के भाव से प्रेरित हो, अपनी अपनी जातीय या साम्प्रदायिक सस्थायें खड़ी की। मुस्लिम लीग, हिन्दू-महासभा, अलीगढ़ का मुस्लिम विश्वविद्यालय और काशी का हिन्दू-विश्वविद्यालय, इसके मूर्तस्वरूप और शायद एक हद तक एक दूसरे की प्रवृत्तियों के जवाब-रूप हैं। जहाँ तक मेरा ख़याल है, इन दोनो संस्थाओ की प्रवृत्ति आरंभ मे समाज-सुधार, शिक्षा-प्रचार-मूलक ही थी। राजनैतिक अधिकार या महत्वाकांक्षायें उस समय चाहे बीज-रूप मे भले रही हो। संभव है, यह सत्य हो कि पहले मुसल्मानो ने अपनी अलग खिचड़ी पकानी शुरू

की हो और उससे जागृत या सावधान होकर हिन्दुओं ने अपनी भी अलग खिचड़ी पकाना शुरू किया हो।

लखनऊ का समझौता—मुसलमानों का डर—

लखनऊ काँग्रेस तक मुसलमान राष्ट्रीय महासभा से अलग रहते थे। सारे भारत की तरफ़ से स्वराज्य की माँग का मसविदा पेश करने का समय आया। राष्ट्रीय महासभा के नेताओं ने, जो प्रायः हिन्दू ही थे, और कुछ राष्ट्रीय विचार के मुस्लिम नेताओं ने इस बात को ज़ोर के साथ अनुभव किया कि स्वराज्य की राष्ट्रीय माँग तब तक 'राष्ट्रीय' न हो सकेगी जब तक मुसलमान राष्ट्रीय महासभा से पृथक् रहते हैं। यहाँ से मुसलमानों के साथ राजनैतिक एकता करने का प्रश्न भारतीय वायुमण्डल में व्याप्त होने लगा। भारत के भावी स्वराज्य का आदर्श तो पार्लियामेंटरी—प्रातिनिधिक—ही हो सकता था। प्रातिनिधिक स्वराज्य के मानी हैं—बहुमत का राज्य। भारतवर्ष में हिन्दुओं की संख्या अधिक है, मुसलमानों से प्रायः तिगुनी। शिक्षा, सुधार आदि में भी हिन्दू मुसलमानों से बढ़े-चढ़े हैं। राजनैतिक बातों में भी महासभा में भी वे ही अगुआ हैं। ऐसी अवस्था में मुसलमानों को यह सन्देह या भय हुआ कि भारत के भावी स्वराज्य में तो हिन्दुओं की ही तूती बोलेगी—मुसलमानों को उनसे दब कर रहना पड़ेगा। उन्हें यह भी डर हुआ हो तो ताज्जुब नहीं कि हिन्दुओं के मन से मुसलमानों की ज्यादतियों की पुरानी कड़वी याद मिटी नहीं है। इधर आर्यसमाज से, उधर हिन्दू-महासभा से उन्हें ख़ौफ़ था।

उन्हे स्वराज्य के समय मे अपनी कायमी, बेहतरी और बहबूदी का एक ही रास्ता दिखाई दिया—स्वराज्य में हमारे प्रतिनिधियों की संख्या ज्यादह हो। इसके लिए वे कौमी प्रतिनिधित्व माँगते थे और उनकी संख्या भी ज्यादह चाहते थे। राष्ट्रीय महासभा के सामने बड़ी दुविधा खड़ी हुई। एक ओर राष्ट्रीय कामों में कौमी वसूल के घुसने का संकट था, दूसरी ओर मुसल्मान राज़ी न हों और स्वराज्य की माँग पर उनके दस्तख़त न हो तो बृटिश सरकार और बृटिश जनता पर उसका असर कुछ न होने का अन्देशा था। हिन्दू और मुस्लिम जाति दो धर्मों की प्रतिनिधि हैं। दोनो धर्मो के व्यवहार की कितनी ही बाते ऐसी है, जो एक दूसरे के ख़िलाफ़ पड़ती हैं, परन्तु जिनका देश के शासन-संचालन से यो कोई ताल्लुक नहीं, हिन्दुओं और मुसल्मानो में अभी राष्ट्रीय विचार और धर्म के मामलो मे उदार ख़याल के, अथवा धर्म की मुख्य और असली बातो का तथा ऊपरी और न-कुछ बातो का पूरा पूरा भेद समझने और उस पर कायम रहने वाले विवेकशील लोगो की संख्या काफ़ी न हो पाई थी। ऐसी हालत मे राष्ट्रीय मसलों का फैसला करने मे क़ौमी या धर्म की ऊपरी बातो को, जिन्हे लोग आम तौर पर धर्म के सिद्धान्तो से भी बढ़कर महत्व देते रहते हैं, प्रधानता मिलने से सारा राष्ट्रीय काम ही गड़बड़ हो जायगा। दोनो जातियो का मनमुटाव और फ़िरकेबंदी राष्ट्रीय महासभा में भी घुस जायगी और स्वराज्य तथा स्वराज्य की माँग ताक मे रक्खी रह जायगी। एक ओर यह भय था और दूसरी ओर मुसल्मानो को खुश करना ज़रूरी था।

उस समय राष्ट्र को इस महान् दुविधा से लोकमान्य तिलक महाराज ने निकाला। उन्होंने कहा—मैं हिन्दुस्तानियों के लिए स्वराज्य चाहता हूँ। मुसलमान हिंदुस्तानी हैं। अतएव यदि सारा राज्य उन्हीं को दे दिया जाय तो मुझे चिन्ता नहीं। ऐसी हालत में मुसल्मानों की पृथक् निर्वाचन की और अधिक संख्या में प्रतिनिधि भेजने की माँग हिन्दू लोग स्वीकार करलें। उस समय उनके सामने आदर्श और सिद्धान्त का तात्विक प्रश्न नहीं था। स्वराज्य की राष्ट्रीय माँग का व्यावहारिक प्रश्न था। उन्होंने भारतवर्ष को एक कुटुम्ब और हिन्दुओं को बड़ा तथा मुसलमानों को छोटा भाई मानकर इस समस्या को हल किया। कुटुम्ब में जब छोटा भाई जिद पकड़ लेता है तब बड़ा भाई या दूसरे बुजुर्ग लोग देन-लेन के अमली तरीक़े से दोनों का झगड़ा मिटा देते हैं। उसमें वे बड़े भाई के बड़प्पन, उदारता, को जाग्रत करते हैं, रिझाते हैं, छोटे भाई की जिद पर ध्यान न देने, उसकी नासमझी पर तरह देने, की सिफ़ारिश करते हैं और दोनों में मेल करा देते हैं। लोकमान्य ने इसी कौटुम्बिक न्याय पर हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न को सुलझाया। उन्होंने हिंदुओं को दबने या झुकने की सलाह नहीं दी। अपनी संख्या और गुण-शील के योग्य बड़प्पन और उदारता का परिचय देने की सलाह दी। उन्होंने मुसलमानों के ओछे विचारों और अनुचित माँगों से लड़ने के बजाय, दलीलों और अन्य उपायों से उनके मनोभावों को दबा कर आगे भभक उठने का अवसर देने के बजाय, उनके अंतःकरण पर अपनी नैतिक विजय करने की सलाह दी। भय और दबाव की विजय तो शरीर

पर होती है, सो भी थोड़े दिन के लिए, लेकिन बड़प्पन, उदारता और एहसान के द्वारा तो हृदय ही जीत लिया जाता है। शारीरिक विजय प्रतिरोध और प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। मानसिक और नैतिक विजय प्रतिपक्षी को सदा के लिए निःशस्त्र कर देती है। इसी स्वर्ण-नियम के अनुसार लोकमान्य ने महासभा को उस समय च्जने की सलाह दी। महासभा ने मुसलमानों की क़ौमी प्रतिनिधि की तथा उनकी ज्यादह सख्या की माँग स्वीकार की।

लोकमान्य की प्रौढ़ नीति का यह सुफल हुआ कि लखनऊ ही मे मुसलमान बहु संख्या मे महासभा मे शरीक हुए और हिन्दू-मुस्लिम-एकता की पक्की बुनियाद पड़ गई, एवं स्वराज्य की मूर्ति का लोग दूर से क्यों न हो, दर्शन करने लगे। लोकमान्य को हिन्दू-मुस्लिम-एकता के जनक का पद मिला। सारे देश में आनंद और संतोष की लहर फैल गई।

महात्मा गाँधी के प्रयत्न—

उसके वाद होमरूल आन्दोलन, श्रीमती बेसेंट की गिरफ्तारी रौलट ऐक्ट, जलियाँवाला हत्याकाण्ड, खिलाफ़त आदि दोनो जातियो के सामान्य संकटो ने, एक-दूसरे को नजदीक आने के लिए, प्रोत्साहित किया और खिलाफत तथा असहयोग-युग मे तो महात्मा गाँधी के नेतृत्व मे हिन्दू-मुस्लिम-एकता एक सच्ची और अमर चीज़ सी दिखाई देने लगी थी। उन्होने लोकमान्य के निर्धारित मार्ग को और विशद किया तथा मित्रता और बन्धुता के आदर्श और उसके आदर्श-पालन के द्वारा, मुस्लिमो को हिंदुओ का एहसानमंद

बना दिया, हिंदुओं को मुसलमानों की दृष्टि में ऊँचा उठा दिया, और दोनो के कंधों पर स्वराज्य का भार ला कर रख दिया। महात्माजी ने इस एकता का सूत्र बताया—अपने अपने कर्तव्यों का निरपेक्ष भाव से पालन करो ! हिन्दू मुसलमानों की ख़िलाफ़त में बिला किसी शर्त के मदद करें। मुसलमान हिंदुओं की गो की रक्षा अपने जिम्मे लें। उन्होंने एक दूसरे को परस्पर एहसान के बंधन में सदा के लिए बाँध देना चाहा था। वे बनिये की तराज़ू हाथ में लेकर नहीं, बल्कि सुधारक का ख़ज़ाना खोल कर हिंदू मुस्लिम-समस्या को सदा के लिए हल करना चाहते थे। ख़िलाफ़त संग्राम में हिन्दुओं को मुसलमानों के साथ और स्वराज्य-संग्राम में मुसलमानों को हिन्दुओं के साथ, अँगरेज़ी सरकार से लड़ाकर दोनों में एक योद्धा और नागरिक के नाते आवश्यक गुणों का विकास, परस्पर की स्फूर्ति के द्वारा, कराना चाहते थे। अपने काम के लिए मर मिटने की तैयारी वे मुसलमानों के सहयोद्धा बनाकर हिन्दुओं में लाना चाहते थे, और हिन्दुओं के संसर्ग में मुसलमानों की जहालत कम कर देना चाहते थे। ख़िलाफ़त संबंधी ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री के वचन-भंग जैसी मक्कारियों का मुकाबला करना और कराना, जहाँ वे हर व्यक्ति का धर्म समझते थे और मनुष्यता, नीति और धर्म के उच्च सिद्धान्तों को सामने रख कर ही वे इस युद्ध में पड़े थे तहाँ, दूसरी ओर, उनके विराट् आन्दोलन के फल-स्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य-वाद के ख़िलाफ़ सारी एशिया के एकीकरण और संगठन की बुनियाद पड़ सकती थी। ख़िलाफ़त की समस्या ब्रिटेन और तुर्किस्तान की समस्या

नहीं, यूरोप और एशिया की, पूर्व और पश्चिम की समस्या हो बैठी थी। खिलाफ़त में योग देकर वे मुसल्मानो की धर्मान्धता को नहीं बढ़ा रहे थे, बल्कि उसे शुद्ध धार्मिक रंग में रंग रहे थे। धर्मान्धता ज़रूर बुरी और हेय चीज़ है; पर धर्म-भाव तो जीवन के लिए आवश्यक खुराक है। इसका असर भी इस्लाम के अन्तःकरण पर हो रहा था। अलीभाई जैसे एक देशीय कट्टर मुसल्मान उदार और राष्ट्रीय बनते जा रहे थे। धर्मान्धता मे सराबोर मुसल्मानो की मसजिद मे वेद-मन्त्रो का उच्चारण और कट्टर आर्य-समाज के नेता स्व० स्वामी श्रद्धानन्दजी का भाषण—यह अलौकिक दृश्य उसी मंत्र का प्रभाव था। मुसल्मानो के हिंसात्मक स्वभाव को रोकने और रफ्ता रफ्ता कम कराने की रसायन, खिलाफ़त का उद्धार और स्वराज्य की प्राप्ति, पूर्ण अहिंसात्मक साधनों से करने का भार मुसल्मानो के सिर पर रख देने से बढ़ कर और क्या हो सकती थी? मुसल्मानों के धर्म-भाव को कायम और जाग्रत रखते हुए, उन्होने एक ओर जहाँ उनकी संकुचितता, हठधर्मी को दूर करने का उद्योग किया तहाँ उनकी उदारता, कृतज्ञता और शौर्य आदि गुणो को विकसित करने का भी प्रयत्न किया। मुसल्मानों का यह कहने लगना कि गोरक्षा को मुसल्मानों पर छोड़ दो, कितने ही मुसल्मानो का गो-मांस खाना छोड़ देना—इसका प्रमाण है। महात्माजी के सात्विक आदर्श सात्विक आचरण, सात्विक स्फूर्ति के प्रभाव से मुस्लिम संस्कृति का तामस भाव कम हो रहा था। यह ठीक है कि महात्माजी के जेल जाने के बाद मुस्लिम स्वभाव का यह सुधार-क्रम आगे न

बढ़ा—और शायद कुछ हद तक पीछे भी हट गया हो; पर इसका कारण एक मात्र मुसलमानों की राजनैतिक महत्वाकांक्षा, उजड्डपन, या धर्मान्धता ही है या हिन्दुओं की अदूरदर्शिता, जल्दबाज़ी, या अधीरता भी है, यह विचारणीय बात है।

मुसलमानों की ग़लती और हिन्दुओं का जवाब—

देश के दुर्भाग्य और स्वराज्य के शाप से मुसलमानों की धर्मान्धता और हिंसा-प्रवृत्ति मोपला, गुलबर्गा मुल्तान, सहारनपुर और कोहाट के भीषण हत्याकाण्डों के रूप में फूट निकली, जिसने कि पहले से सचिन्त और शंकित हिन्दुओं के दिल को ज़ख्मी कर दिया और उनके दिल में होने वाले सुधार तथा परिवर्त्तन को सहसा बड़ा धक्का पहुँचाया। इन दंगों के बारे में अब तक जो हालात जाहिर हुए हैं, उनसे आम तौर पर लोग इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि हिन्दुओं का क़ुसूर कम, मुसलमानों का क़ुसूर ज्यादह था। बेशक जिम्मेवार मुसलमान नेताओं ने उन अपनी जाति के दंगाइयों की लानत-मलामत की है; पर यदि मैं मुसलमान और मुस्लिम नेता होता तो इतने से सन्तोष न मान बैठता। मैं इस्लाम और मुस्लिम संस्कृति में से उन कारणों को खोजता, जिन्होंने धर्मान्धता और हिंसा-काण्ड को आम मुसलमानों का दूसरा स्वभाव-सा बना दिया है और उनके दूर करने में कोताही या ग़फ़लत न करता। मोपला और गुलबर्गा के उत्पातों ने महात्माजी के एकता-कार्य में भी बड़ी बाधा पहुँचाई और उनके जेल जाने के बाद होने वाले दंगों और खून-खच्चर

ने, तथा उनके कारण या कार्य-रूप पैदा होने और बढ़ने वाले तबलीग़-तनजीम और शुद्धि-संगठन के तीव्र सक्षोभ और आन्दोलनो ने तो, एकता तो दूर रही, हिन्दु-मुसलमानो मे वह कटुता और शत्रुता पैदा कर दी, जो पुरानी शत्रुता को भी एकबार भुला देती है। यह मान लेने पर भी कि दंगो मे मुसलमान ही अधिकांश दोषी थे, शुद्धि और सगठन मुसलमानो के तबलीग़ और तनजीम का जवाब था, यह दावे के साथ नही कह सकते कि हिन्दू सब तरह बरी है और उनके शुद्धि-संगठन सर्वांश मे शुद्ध-रूप से चले और चल रहे है। मुसलमानों की तरफ से ज्यादती होने पर भी, हिन्दुओं के दिल को चोट पर चोट पहुँचती रहने पर भी, स्वराज्य, एकता और हिन्दू-धर्म के नाम पर, मै यह कहना चाहता हूँ कि हम हिन्दुओ ने उस बुजुर्गी, दानाई, दूरंदेशी और धीरज का परिचय नही दिया जिनकी हमसे उम्मीद की जा सकती थी। यही सब से बड़ा अवसर हमारी परीक्षा का था, जिस समय हमे अजहद चतुराई और हिकमतअमली से काम लेना था, पर हमने ग़लती खाई। हमें जितना ऊँचा उठना चाहिए था—हमारा धर्म और संस्कृति हमे जिस ऊँचे आसन पर बिठा रही है—उतने ऊँचे न उठना ही हमने उचित समझा। मै यह नही कहता कि मुसलमानो की बुराइयो का प्रतिकार अथवा शुद्धि-संगठन का आन्दोलन साधारण मनुष्य-स्वभाव के या नीति-नियमो के विपरीत है; बल्कि मै तो यह कहता हूँ कि उस समय हम से असाधारण व्यवहार की आशा की गई थी और की जा सकती थी। यदि मै मुसलमान होता तो आज के मुसलमानो की तरह हिन्दुओ के स्वरक्षात्मक प्रतीकारो

पर चिल्ल-पों न मचाता, बल्कि उनके उद्योग की क़द्र करता—हाँ, अपनी जाति को अलबत्ता उनकी भूमिका से ऊँचा उठने की प्रेरणा करता, जैसा कि, हिन्दू होने के कारण, हिन्दुओं को उसके लिए प्रेरित करना मैं अपना धर्म समझता हूँ। एक हिंदू के नाते मेरा कर्तव्य है कि मैं अपनी जाति को उसके दोप, त्रुटि भूल आदि पर ध्यान देकर उन्हें दूर करने की प्रेरणा करूँ—और दूसरों के गुणों और खूबियों को देखने और उनका अनुकरण करने की सलाह दूँ। यदि हिन्दू और मुसल्मान दोनों, बिना दूसरे की राह देखे या उनसे कुछ उम्मीद रक्खे,—निरपेक्ष भाव से—एक दूसरे के प्रति अपने अपने कर्तव्य का तो पालन करें—अपनी बुराइयों, कमियों और खामियों को तो दूर करने में लगे रहें; पर दूसरों की बुराइयों और कमियों पर ध्यान न देकर ग़म खाते रहते तो दोनो का सुधार भी जल्द हो जाता और दोनों में प्रेम, सद्भाव क़ायम रह कर एकता अमिट हो जाती। नहीं, मैं तो कहता हूँ कि मुसल्मानों के ग़लती करने पर भी यदि हम हिन्दू उनकी ग़लती का जवाब उसी तरीके से न देकर अपनी राह न छोड़ते, निरपेक्ष भाव से बिना विचलित हुए, बिना डरे अपने कर्तव्य पर डँटे रहते तो मुसल्मान अपने आप लजाते और सीधे रास्ते आ जाते। कर्तव्य ए. चीज़ है, सौदा दूसरी चीज़ है। कर्तव्य में कोई शर्त नहीं होती; सौदा शर्तों पर होता है। बाप-बेटा और पति-पत्नी अथवा भाई-भाई यदि सौदे के सिद्धान्त पर चलें तो एक मिनिट सुलह से नहीं रह सकते। पश्चिम सौदे का पुजारी है इसलिए वहाँ का कौटुम्बिक और सामाजिक जीवन

कलह का घर हो रहा है। जिस हद तक प्रेम या कर्तव्य का भाव उस सौदे को अपने नियंत्रण मे रखता है, उस हद तक वहाँ सुख-शान्ति दिखाई देती है। भारत कर्तव्य का पूजक है। कर्तव्य का तत्व सौदे के तत्व से अधिक परिपक्व है और अधिक अनुभवी समाज—शास्त्रियो के दिमाग़ की उपज है।

हिन्दुओं के एतराज़—

परन्तु ऐसी सलाह देने पर हिंदू कहते है, "हम महात्मा नहीं है, हम साधु नही हैं, हम हिंदुत्व खोना नही चाहते, हम मुसल्मानों से दब कर नहीं रहना चाहते, हमारी उदारता से मुसलमान बेजा फ़ायदा उठाते हैं—खिलाफत मे हमने मुसलमानो का साथ दिया—भाईचारा निबाहा, उसका बदला उन्होने हमें मालाबार, गुलवर्गा, मुल्तान, सहारनपुर और कोहाट मे हम पर सितम गुज़ार कर दिया। यह तो जाति ही बेईमान है; इनके तो धर्म-ग्रन्थ, इनकी तो संस्कृति ही मार-काट, लूट-खसोट के इतिहासो से भरी पड़ी है। ये तो हिन्दुओ के खून पीने पर, उनका नामोनिशान मिटा देने पर तुले बैठे है। महात्माजी ने हिन्दुओ से सहायता दिला कर इन्हे मज़बूत बना दिया—हिन्दुओ की ही जूतियो से हिन्दुओ का सिर फुड़वाया।" ये उद्गार प्रायः उन्ही शब्दो में दे रहा हूँ जो समय समय पर भिन्न भिन्न श्रेणी के लोगों से सुन चुका हूँ।

इनको सुनकर मेरी रूह काँप उठती है। यदि मै मुसल्मान होता तो हिंदुओ के इन उद्गारों और भावो पर पूरी संजीदगी के साथ विचार करता—मेरा खाना पीना हराम हो जाता और मै

अपनी जाति को हिन्दुओं की नजर में ऊँचा उठने में अपनी सारी शक्ति लगा देता; पर हिन्दुओं को तो मैं यही कह सकता हूँ, ईश्वर के लिए न्याय करो। कुछ व्यक्तियों के कारण सारी जाति को, कुछ बुराइयों के कारण सारी संस्कृति को, कुछ वचनों के कारण सारे धर्म-ग्रन्थों को गालियाँ न दो। महात्मा और साधु के रस्ते चलना न हिन्दू धर्म में गुनाह है न हिन्दू-समाज में। यदि हिन्दू धर्म और संस्कृति के उच्च नियमों का पालन करने से हिन्दुत्व नष्ट होता है तो हिन्दुत्व की आपकी भावना और धारणा में ज़रूर कहीं गलती है। बेजा फायदा उठाने का डर कायरों को होता है; वीरों को यह बात शोभा नहीं देती। खिलाफत में हिन्दुओं ने जो सहायता दी उसका हद से ज्यादा ढिंढोरा पीट कर हमने उसके स्वाद, गौरव, शोभा और इसीलिये शुफल को खो दिया है। मुसलमानों की बेइमानी का रोना रोने की अपेक्षा क्या हिन्दुओं में ईमानदारी और सचाई बढ़ाने के लिये कमर कस लेना बुरा है? मुसलमानों के धर्म-ग्रन्थ यदि बुरे हैं, संस्कृति यदि बिगड़ी हुई है तो उसकी चिन्ता वे करेंगे—आपके धर्म-ग्रन्थ और आपकी सभ्यता को उज्ज्वल करने में क्यों न आपकी शक्ति लगनी चाहिए? महात्माजी ने हिन्दुओं को धर्म का, शूर-वीरों का, रास्ता बताया था। हिन्दू ओछे बनिये का रास्ता चाहते हैं। धर्म-वीरों की पूरी क़ीमत देने से इन्कार कर वे सस्ते सेवक बनना चाहते हैं। महात्माजी पर हिन्दुओं को कमजोर बनाने का इल्ज़ाम लगा कर हम अपने धर्म का और संस्कृति का अपमान और हिन्दू-समाज की हानि कर रहे हैं। महात्माजी ने मुसलमानों को ताक़तवर और

हिन्दुओं को कमजोर नहीं बनाया। वास्तव में देखा जाय तो असहयोग आन्दोलन से सारे देश मे जागृति, चैतन्य, उत्साह और बल की एक अपूर्व लहर फैली, जिससे भारत के सब जातियो और वर्गों को पोषण और बल मिला। महात्मा जी के आज़ाद रहते हुए उस सम्मिलित बल का उपयोग ब्रिटिश सरकार से लड़ने मे हुआ; उनके क़ैद हो जाने के बाद बाहर रहे राजनैतिक नेताओ की अक्षमता और जातीय या साम्प्रदायिक नेताओ की अधीरता, आतुरता और शङ्कित-चित्तता के कारण वह संगठित बल एक ओर धारा-सभा सम्बन्धी वाग्युद्धों मे और दूसरी ओर हिन्दू-मुसलमान झगड़ो में बरबाद होने लगा—जो शक्ति दोनो जातियों और सारे राष्ट्र के प्रतिपक्षी की बुद्धि दुरुस्त करने में लगने के लिये पैदा हुई थी वह योग्य और उचित नेतृत्व के अभाव मे आपस की 'यादवी' मे काम आने लगी। इस तरह हमने ठीक उसी समय अपनी दूरंदेशी और चतुराई का कम परिचय दिया जब कि हमे उसकी सबसे ज्यादह ज़रूरत थी। यह दर्दनाक कहानी तो एक मात्र व्यथित हृदय के सूखे आँसुओं से ही लिखी जा सकती है।

तिलक महाराज का रास्ता छोडा—

मेरे कहने का मतलब यह है कि महात्माजी के जेल जाने के बाद हिन्दुओ ने स्वर्गीय तिलक महाराज का बताया और महात्माजी का प्रशस्त किया हिन्दू-मुस्लिम-एकता का राज-मार्ग छोड़ दिया और मुस्लिमो के आक्रमणो और जातीय हलचलो से अधीर हो कर समझदारी, ठंढई और बड़प्पन से काम लेने के बजाय जोश मे आकर उन्ही का अनुसरण करने लगे। हमें

करना चाहिए था यह कि दंगों के मौकों पर हिन्दुओं को शान्त करके कहते, मुसलमानों ने बेशक गलती की; लेकिन वे हमारे भाई हैं—हमें और उन्हें एक ही साथ जीना, एक ही साथ मरना है, उनकी गलती का जवाब हमें वैसी ही गलती करके न देना चाहिए। उनकी ज्यादतियों के लिए ईश्वर उनसे जवाब तलब करेगा। उन्होंने यह हमारे जानोमाल पर नहीं, हमारी बहूबेटियो पर नहीं, हमारे मन्दिरो पर नहीं, अपने ही जानोमाल पर, अपनी ही बहू-बेटियों पर, अपनी ही मसजिदों पर हाथ उठाया है, अपने ही को उन्होंने इस्लाम और दुनियाँ का अपराधी बनाया है। उन्होंने यदि धर्म का रास्ता छोड़ दिया तो हमें यह कदापि उचित नहीं कि हम अपने भी सत्पथ को छोड़ें। ऐसी सद्भाव की बात हमारे मुँह से निकलने के बजाय जोश और कटुता की बातें हमारे मुँह से निकलने लगीं। हम कहने लगे—"देखो, मुसलमानों ने हम पर कैसा जोरो-जुल्म किया! खिलाफत में हमने इनकी मदद की, इन्होंने उसका ऐसा बदला चुकाया। हम पहले ही कहते थे हिन्दू-मुस्लिम-एकता होने की नहीं। मुसलमान कब किसका एहसान मानने लगे थे? इन पर विश्वास करना बेवकूफी है। आओ, हिन्दुओ, तैयार हो जाओ। अपने जान-माल, बहू-बेटियो और धर्म-मन्दिरो की रक्षा में जुट पड़ो। मुसलमान तुम्हें एक लगावें तो तुम दो लगाने के लिए जब तक तैयार न रहोगे तब तक उनकी तुम्हारी मित्रता नहीं हो सकती। "भय बिनु प्रीति न होत" आदि। हमने उनके उच्च गुणों और शराफत को स्पर्श और जाग्रत करना छोड़कर हीन मनोवृत्तियों को उत्तेजित

किया। मुसलमानो ने मुस्लिम जनता के स्वार्थ-भाव और कोमल धार्मिक भावो को बुरी तरह जगा जगा कर उन्हे उभाड़ा, हिन्दुओं ने भी उसके जवाब मे बहुत-कुछ उन्हीं का अनुकरण किया। लोकमान्य की लखनऊ वाली प्रौढ़ सलाह और महात्माजी की अप्रतिरोध-नीति दोनो का हमने त्याग कर दिया। अक्ल की जगह जोश ने ले ली—जोश भी जहाँ काम आना चाहिये था, वहाँ नही आया। हमारी फ़ौज ग़नीम को छोड़ कर आपस मे ही गोलाबारी करने लगी।

लड़ाई की तैयारियाँ—

मुसल्मान तो ग़लती पर ग़लती करते चले गये। हिन्दुओ को मुसल्मान बनाने का सिलसिला जारी था ही, इधर और प्रतिनिधि बढ़ाने की आवाज़ भी उठने लगी। पंजाब में मियाँ फ़जली हुसैन ने सरकारी नौकरियो मे मुसल्मानो की कुछ तादाद बढ़ा दी। हिन्दू बेचैन होने लगे। कुछ मुसल्मानो ने अमीर काबुल को चिट्ठियाँ भेजी। बस, अफगानिस्तान की हिन्दुस्थान पर चढ़ाइयाँ होने की आवाज़ बुलन्द होने लगी। धीरे धीरे पंजाब का ज़हर सारे हिन्दुस्तान मे फैल गया। एक तरफ़ डाक्टर किचलू ने तनजीम का, ख्वाजाहसन निज़ामी ने तबलीग़ का झण्डा उठाया; दूसरी तरफ़ स्वामी श्रद्धानंदजी ने शुद्धि-संगठन का शंख फूँका। मलकानो की शुद्धि ने सारे देश मे हलचल मचा दी। इधर श्री जिनाह ने मुस्लिम लीग का नेतृत्व ग्रहण किया; उधर पू० मालवीयजी ने हिन्दू महासभा को पुनर्जीवन दिया। इस तरह एक ओर धर्म के दायरे मे और दूसरी ओर राजनीति

के आँगन में दोनो का रण-क्षेत्र तैयार होने लगा। इधर बाजे, आरती और गोवध का प्रश्न उग्र रूप धारण करने लगा, उधर जातिगत प्रतिनिधित्व के नक्कारे बजने लगे।

<u>जेल से छूटने पर महात्माजी की कोशिशें—</u>

प्रायः ऐसे ही जातीय जोश, जातीय कटुता, और परस्पर अविश्वास, सन्देह और भय के दूषित वायुमण्डल में महात्माजी जेल से छूटे। उन्होने अपने लेखो और व्याख्यानों में सैद्धान्तिक चर्चा और व्यावहारिक उपाय द्वारा स्थिति को सुधारने की बहुत कुछ चेष्टायें की। बाजे, आरती और गोवध के लिए उन्होंने मुसल्मानों को गोवध बंद कर देने और हिन्दुओं को मस्जिद के सामने बाजा बंद कर देने की सलाह दी। जातीय प्रतिनिधित्व के मामले में उन्होंने राय दी कि हिन्दू हकीम अजमलखाँ के हाथो में क़लम दे दें और वे मुसल्मानों की तरफ़ से जो कुछ माँगें, हिन्दू उसे मंजूर कर लें। और अन्त में कोहाट के भीषण काण्ड के बाद, देहली में, २१ दिन का उपवास भी कर डाला—सब से आखिरी महा अस्त्र का भी प्रयोग कर देखा जिसका प्रत्यक्ष व्यावहारिक फल हुआ देहली की शान्ति-परिषद्। मगर महात्माजी के इन तमाम उपायों के करते हुए भी आग फैलती ही गई। बस, यहाँ मेरे ख्याल में, एकता-प्रयत्न का अन्त होता है। यों तो राष्ट्रीय महासभा के नेता समय समय पर एकता की आवाज उठाते रहे हैं और ऐसे वैसे उपाय भी करते रहे हैं—परन्तु महात्माजी अपनी तरफ़ से इसमें तटस्थ ही रहे।

४—तबलीग़-तनज़ीम और शुद्धि-संगठन

अब इस प्रकरण मे हम इस बात पर विचार करेगे कि हिन्दू-मुसल्मानों की इस अलहदा जथाबंदी, आपस के विद्वेष, हत्याकाण्ड आदि से देश को और उनको क्या क्या नफ़ा-नुकसान हुआ तथा तबलीग-तनज़ीम, शुद्धि-संगठन का मूल और उनका वास्तविक रूप क्या है।

ज़ातीय आन्दोलनों का कुफल—

हिन्दु-मुसल्मानो के दंगे, तबलीग़-तनज़ीम और शुद्धि-संगठन के आन्दोलनो का पहला बुरा परिणाम तो यह हुआ कि दोनो के बीच भेद और फूट की खाई गहरी होने लगी। दोनो पक्ष के उदार और राष्ट्रीय विचार के छोटे-बड़े नेता और कार्यकर्ता, एक हद तक तटस्थ रहने के बाद अपनी अपनी जाति के आन्दोलन मे शरीक होने लगे। हिन्दुओ की अपेक्षा मुसल्मानो मे यह परिवर्तन ज्यादह हुआ। दूसरा और सब से भारी नुकसान यह हुआ कि देश का ध्यान स्वराज्य की लड़ाई और राष्ट्रीय महासभा की ओर से हटकर, आपस की लड़ाइयो और जातिगत सभाओ की ओर खिचने लगा, जिससे सरकार के हाथ मजबूत होते चले गये—जातिगत प्रतिनिधित्व के प्रश्न ने तो उसे हमारे अन्दर फूट फैलाने और लड़ने के कारणों का खज़ाना खुला कर देने का पूरा पूरा मौका दिया। इधर मुसल्मानों के जवाब मे कुछ हिंदुओ ने भी

अपने अलहदा प्रतिनिधि भेजने की आवाज़ उठाई, जिसका एक कुफल तो यह हुआ कि हिंदुओं के कुछ फिरकों तथा ईसाई-पारसी आदि में भी अपने अलहदा प्रतिनिधि माँगने का भाव उदय होने लगा। सारा देश दलादली, जातिगत प्रश्नों और झगड़ो की बातों से भर गया—स्वराज्य, सरकार से लड़ाई, राष्ट्रीय एकता की बातें, मानों भूतकाल का इतिहास हो गईं। असहयोग आन्दोलन के ज़माने में जो तत्व—सहयोगी और जी हुज़ूर दल—कमज़ोर पड़ गया था, जिसने कि देश के हज़ारो नवयुवकों को जेल में ठूँसने और सताने में सरकार का साथ दिया था, वे जाति-भक्त बन कर देश के सामने आने लगे और हर तरह से असहयोग, स्वराज्य, राष्ट्रीय एकता, सरकार का मुक़ाबला, इन भावों को कमज़ोरी मिलने लगी। इस प्रकार राष्ट्रीय, राजनैतिक और भारत के स्वाधीनता-संग्राम की दृष्टि से देश की अपार, अपरिमित अक्षम्य हानि हुई—जो स्वराज्य नज़दीक आता हुआ दिखाई दिया था, वह आँखों की ओट हो गया। जिस महान् आन्दोलन ने जनता को गहरी नींद से एकाएक जगा दिया था, जिसने लार्ड रीडिंग की अक़ल को चक्कर में डाल दिया था, वह एक खिल्ली उड़ाने का विषय हो चला था—इससे बढ़कर हानि देश की क्या हो सकती है?

हिन्दुओं को लाभ—

मुसलमानों को तबलीग़—तनज़ीम से क्या लाभ हुआ, सो तो मेरे लिये कहना कठिन है, पर हिन्दुओं को इससे इतना लाभ ज़रूर हुआ कि (१) हिन्दुओं के जुदा जुदा

फिरके—सम्प्रदाय—आपस मे एक होने लगे, (२) जाति-सुधार, जाति-रक्षा की शक्ति का वे अपने अन्दर अनुभव करने लगे और (३) मुसलमान गुण्डो की ज्यादतियो का मुकाबला कलकत्ते आदि मे सफलता-पूर्वक होने के कारण, उन्हें यह मालूम हो गया कि हिन्दू अब बकरी की तरह या दबी बिल्ली की तरह हमारे अत्याचारो को न सहलेंगे—वे भी अब हमे उसी तरीके से सीधा कर देने पर तुल गये है, जो तरीका हमारी समझ मे जल्दी आ जाता है।

मगर ऐसा जान पड़ता है कि जब खुल कर हमला करने की उनकी प्रवृत्ति कम पड़ गई—उसके लिये उन्हे मैदान न मिलने लगा, तब उन्होने अपना तरीक़ा बदल दिया—छिपे छिपे वे हिन्दू आन्दोलनों के नेताओं को—अपनी ग़लत राय मे उनकी जड़ों को ही दुनिया से मिटा देने की तजवीज़ करने लगे, जिसका कि अन्त—नही, शायद आरंभ पू० स्वामी श्रद्धानन्दजी के खून मे हुआ। बहुतों का ख़याल है कि यह खून एक बिगड़े दिल की करतूत नही है ,अनेक बिगड़े दिलों की साज़िश का परिणाम है।

कई सवाल—

अब यहाँ कई सवाल खड़े होते हैं। हिन्दू मुस्लिम नेता क्या इन हानि लाभों को पहले से नही सोच पाये थे ? क्या वे स्वराज्य का और एकता का महत्व नही जानते थे या उसको उतना मूल्य नही देते है ? महात्मा जी के जेल जाते ही क्यों सारी लहर और ही तरफ़ बह गई ? यदि उस समय बाहर रहे देश और

समाज के नेता महात्माजी के तरीके से सहमत न थे या उन पर अमल करने की शक्ति अपने में महसूस नहीं करते थे तो फिर क्या उन्हें अपनी अक्ल के मुताबिक कोई काम ही नहीं करना चाहिये था ? तबलीगत-तजीम या शुद्धि-संगठन आखिर क्यों बुरा है ? क्या अपनी जाति और धर्म की रक्षा करना कोई गुनाह है ? क्या अपनी रक्षा के लिये आक्रमणकारियों का मुकाबला करना कोई पाप है ? जब कि एक जाति हर भले बुरे उपाय से दूसरी जाति के लोगों को अपने मे मिला कर अपनी तादाद बढ़ा रही है तब हमारा अपनी जाति को मजबूत बनाना, अपनी तादाद न घटने देना या उसे बढ़ाना क्यों अनुचित है ? यदि स्वराज्य के मानी हैं—हिन्दुओं का कमजोर होकर रहना, हिन्दुत्व को खोना, तो हमें ऐसा स्वराज्य दरकार नहीं।

उन पर विचार—

ये सवाल बिल्कुल स्वाभाविक हैं और इनका जवाब दिया जाना भी जरूरी है। मगर 'हाँ' या 'ना' में इनका जवाब देने के बदले यह ज्यादह अच्छा होगा कि हम उन पर सविस्तर विचार करें। इसमें सब से पहले हमें यह सोचना चाहिए कि अलहदा जत्थाबंदी की यह बुनियाद नये सिरे से क्यों पड़ी ? लखनऊ के समझौते के बाद, महात्माजी के जेल जाने से पहले तक, क्यों मुस्लिम लीग और हिन्दू-महासभा सोती रही और क्यों उनके जेल जाते ही फिर पुरानी कटुता और दुश्मनी ताजी हो गई ? क्यों मुसलमान अपनी तादाद बढ़ाने के लिए इतने चिन्तित और

बेचैन हैं ? और क्यों हिन्दू भी इसके लिए इतने परेशान हैं ? फिर हिन्दुस्तान के ही मुसलमानो को इस्लाम की बढ़ती की, अपनी तादाद बढ़ाने की इतनी फिक्र क्यों है, भारत के बाहर के मुसलमानों मे क्या इस्लाम का प्रेम रहा ही नही ? क्यो हिन्दू उनके हरएक काम को सन्देह की नज़र से देखते हैं और मुसलमान हिदुओ की बातो पर विश्वास नही रखते ? क्या दोनो के धर्मों में सचमुच अपनी अपनी संख्या बढ़ाने से बढ़ कर कोई धर्म-सिद्धान्त और धार्मिक आज्ञा नही है ? क्या दोनो जातियो और धर्मों मे अब कोई और ऐसी बुराई या खामी रही नही है जो इसी एक बात पर दोनो इस क़दर मरने-मारने पर तुले हुए है ?

जातीय आन्दोलनों का मूल—राजनैतिक—

मै जहाँ तक विचार करता हूँ इन आंदोलनो और झगड़ो का मूल, धर्म मे नही, राजनीति मे है—इस बुराई की जड़ खुद हमारा स्वराज्य ही है। सख्या बढ़ाने का प्रश्न राजनैतिक दॉव के सिवा कुछ नही है। मै पहले बता चुका हूँ कि भारत का भावी स्वराज्य प्रातिनिधिक अर्थात् बहुमत का शासन होगा और मुसलमानो की तादादा भारत मे कम होने के कारण उन्हे यह भय पैदा हो गया है कि भारतीय स्वराज्य मे हमे दबकर रहना पड़ेगा। स्वराज्य मे अपनी स्थिति को अच्छी और मज़बूत बनाये रखने के लिए उनके पास दो ही साधन है—(१) यातो दूसरी जातियो के लोगो को मुसलमान बनाकर अपनी तादाद इतनी बढ़ा लें कि

हिंदुओं के कम से कम बराबर हो होजायँ, जिससे स्वराज्य में हमारे प्रतिनिधि भी, संख्या के अनुसार, हिंदुओं के प्रतिनिधियों के बराबर हो जायँ और हमें उनसे कमज़ोर बनकर न रहना पड़े या (२) आज से ही हिंदुओं से ऐसा ठहराव करालिया जाय कि हमारे प्रतिनिधि, हमारी संख्या कम होते हुए भी, ज्यादह तादाद मे रहें। उन्होने दोनों साधनों से काम लेना शुरू किया। ख्वाजा हसननिजामी तो यहाँ तक गिरे कि वेश्याओं के द्वारा, रिश्वत देकर, शादियों का लालच देकर, हर भले और बुरे तरीके को जायज़ मानकर भी—तलवार के घाट उतार कर भी मुसलमान बनाने का तरीका तो उनके बापदादों से चला आ रहा है—उन्होंने मुसलमानों की तादाद बढ़ाने की भारी भारी तजवीजें कीं, और काम बढ़ा। यह हुई मज़हब के नाम पर राजनैतिक खेल खेलने की गंदी चाल। इधर उनके राजनीति के खिलाड़ियों ने राष्ट्रीय महासभा और हिंदुओं से तो विशेषाधिकार चाहे ही, इधर एक दल सरकार की बगल में भी घुसकर अपना मतलब साधने की चेष्टा करने लगा।

पारस्परिक भय और महात्माजी का आश्वासन—

हिंदू इस दाँव को समझ गये। मगर उन्होंने या तो इसके गहरे और असली कारणों पर पूरा विचार नहीं किया, या उसकी असली दवा न की। उसकी जड़ काट डालने के बजाय वे भी प्रायः वैसी ही चालें चलकर उनके दाँव को हराने में लग-गये। हमें भूलना न चाहिए कि मुसलमानों के इस दाँव के मूल

मे है, उनका यह भय कि स्वराज्य में हम कमजोर रहेगे। इसका सच्चा और कारगर इलाज यही हो सकता था कि उन्हे यक़ीन कराया जाय कि स्वराज्य में किसी भी छोटी जाति के साथ अन्याय न होगा—उनके हितो का ख़याल बड़ी जातियाँ अपने से ज्यादह रक्खेंगी। कम से कम उतनाही रक्खेंगी जितना कि खुद अपना रखती हैं या रक्खेंगी। आप देखेगे कि स्वराज्य के कार्य-क्रम में राष्ट्रीय एकता अथवा सर्व जातीय एकता को महात्माजी ने सबसे बड़ा स्थान दिया है और उसका कारण यही है। उन्होने हरएक प्रसंग पर सब छोटी जातियो को यह आश्वासन दिया है कि स्वराज्य मे तुम्हारे हितों की हानि न हो पावेगी। पारसी और हिन्दुस्तानी ईसाई, हिन्दू या मुसलमान जाति से उतने शंकित नही है जितने मुसल्मान हिन्दुओं से है अथवा सिक्ख कुछ समय तक रहे थे। इसका कारण स्पष्ट है। हिन्दुओं और मुसल्मानों का तो वैमनस्य सदियो से चला आ रहा था और अब तक मिटा नहीं है। इधर कुछ सिक्ख हिन्दुओं से अपने को पृथक् मानते थे और हिन्दू भी वेदों को न मानने के कारण जैनियो और बौद्धो की तरह गलती से उन्हे अहिन्दू मानते थे। हिन्दुस्तान में तीन ही जातियाँ है जिनकी राजनैतिक आकांक्षायें बढ़ी हुई है, जिनके बड़े बड़े साम्राज्य रहे हैं, जिनकी सत्ता अभी अभी छिनी है—हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख। इसीलिये ये तीनों एक दूसरी से शंकित और चिन्तित रहती हैं। महात्माजी ने स्वराज्य के कार्य-क्रम में सबसे बड़ा ख़याल इसी बात का रक्खा था—ख़िलाफ़त में सह-योग दे कर उन्होने मुसल्मानो को हिन्दुओं की तरफ़ से यह

असली आश्वासन देना चाहा था कि हिन्दुओं से न डरो—वे तुम्हारे दुश्मन नहीं, भाई हैं। तुम्हारे बुरे को अपना बुरा समझते हैं और सिक्खों तथा पारसियों के मनोभावों का ख़याल करके वे एकता की जगह हिन्दू-मुस्लिम सिक्ख, ईसाई-पारसी-एकता इतना लंबा नाम महीनों लिखते रहे थे। सिक्ख तो अब हिन्दू ही माने जाते हैं इसलिये हिन्दुओं और मुसलमानों का प्रश्न बाकी रह गया।

ताक़त की आज़माइश का सवाल—

मुसलमान हिंदुओं से इसलिये डरते हैं कि हिंदुओं की संख्या उनसे बहुत ज्यादह है और आगे स्वराज्य में या आज वृटिश सरकार में भी, प्रतिनिधियों के चुनाव और संख्या पर उनकी जाति की संख्या का असर होता है। इधर हिंदू उनसे इसलिए डरते हैं कि यद्यपि मुसलमान आज उनसे संख्या में कम हैं तथापि एक तो अपनी तादाद और अपने प्रतिनिधि बढ़ाने में वे सतत उद्योगशील हैं और दूसरे बाहर के मुसल्मानों को मिलाकर उनका बल बहुत हो जाता है। हिंदुस्तान में भी उनकी कई रियासतें हैं और बाहर तो अफ़गानिस्तान, तुर्कस्तान, ईरान, मिश्र जैसे स्वतंत्र राज्य भी हैं। हिंदुओं का तो, कुछ पराधीन रियासतों के अलावा, नेपाल को छोड़कर दुनिया में कोई स्वतंत्र राज्य नहीं है और नैपाल भी वास्तव में उतना स्वतंत्र नहीं है जितना काबुल में है। अंगरेजों की राजनैतिक दूरदर्शी ने उसे अब तक इस क़दर स्वतंत्र रहने दिया है। इसी कारण मुसलमानों के

मुस्लिम-समस्तता (Pan-Islamism) आन्दोलन के जवाब में हिदुओं ने भी चीन, जापान, तिब्बत, स्याम के बौद्धों को हिदू-संगठन मे शामिल करने की योजना रक्खी है। इस प्रकार ये दोनों महान् मानव-वंश अपनी अपनी सत्ता और विस्तार की अभिलाषा से, कोई आक्रामक रीति से, तो कोई रक्षात्मक रीति से, अपना अपना संगठन करने में लगी हुई हैं। और भारत मे संख्या-वृद्धि के लिए दोनों की लड़ाइयाँ इसी हेतु के प्रत्यक्ष चिह्न हैं। धर्म-संशोधन, धर्म-पालन, धर्म-विस्तार, इसके मूल मे नही, जाति-विस्तार और जाति-प्रभुत्व है। यह धर्म-प्रचार का, धार्मिक जीवन का प्रश्न नही है; यह ताकत की आज़माइश (trial of strength) का सवाल है।

मत-बल और लाठी-बल—

हाँ, तो मुसलमान हिन्दुओ के संख्या-बल से डर रहे हैं और हिन्दू उनके तलवार-बल से। दुनिया की राजनैतिक गति-विधि का, शासन-व्यवस्थाओ का, दुनिया के राष्ट्रों के बलाबल और प्रवृत्तियो का, जिन्हे काफी ज्ञान है, वे अच्छी तरह समझे हुए है कि जहाँ कही प्रातिनिधिक शासन-प्रणाली प्रचलित है, वहाँ वह प्रजा के बाहुबल पर नहीं, मत बल पर चल रही है। यदि हमारी सरकार वास्तव मे राष्ट्रीय होती और हमारी फूट और लड़ाइयों में उसका गहरा स्वार्थ न होता तो आज भी मुसलमानों का तलवार, तमंचा-बल ताक मे रक्खा रह जाता। न अफग़ानिस्तान, न तुर्किस्तान उसके लिये दौड़ कर आ सकते है, न आवेंगे। मतलब यह कि इन दिनो

दुनिया की शासन-प्रणालियों में मत-बल को ही स्थान है, बाहु-बल को नहीं। भारत के स्वराज्य में मत-बल की चलेगी, लाठी-बल की नहीं। हमारा लाठी-बल बाहरी शत्रुओं के मुकाबले में भले ही काम आ सके, भीतरी शासन-व्यवस्था में वह किसी काम का नहीं। अतएव मुसलमानों का बाहुबल यद्यपि आज हिंदुओं को चौंकाता और भयभीत करता है; पर मुसलमानों को वह बेकार मालुम होता है। वह हमारे लिये भयप्रद तभी तक है जब तक हम उसके रहस्य को समझ नहीं लेते हैं और उससे डरते रहते हैं। हम इसे समझें या न समझें, यह निश्चित है कि ज्यों ज्यों दिन जायंगे, ज्यों ज्यों स्वराज्य नजदीक आता जायगा, अथवा ज्यों ज्यों वर्तमान शासन में प्रजा को अधिकाधिक अधि-कार मिलते जायंगे, त्यों त्यों हिन्दुओं का भय कम होता जायगा और मुसलमानों का बढ़ता जायगा। क्योंकि त्यों त्यों मुसल्मानों का लाठी-बल बेकार होता जायगा और हिन्दुओं का मत बल पुष्ट और कारगर होता जायगा। फलतः हिन्दुओं की चिन्ता और शंका घटती जायगी और मुसल्मानों की बढ़ती जायगी।

लोकमान्य और महात्माजी का मार्ग—

मुसलमानों की चिन्ता और भय तब तक दूर नहीं हो सकता जब तक या तो वे अपने को पूरा, सच अर्थ में, हिन्दुस्तानी नहीं मान और बना लेते, या जब तक हिन्दू उन्हें उनके हितों की रक्षा का पूरा यकीन नहीं दिला देते। पहली बात प्रधानतः मुस-ल्मानों के अधीन है और दूसरी हिन्दुओं के। मुसल्मानों को

चाहिए कि वे दुनिया की हालत को, रुख को और अपनी स्थिति को देखें, जानें और समझें। उन्हे चाहे बाहरी मुस्लिम शक्तियो का अभिमान हो; पर उन शक्तियो और राष्ट्रो को उनकी तनिक भी परवा नही है, इसे वे समझें। अरब के बजाय अब वे हिन्दुस्तान को अपनी मातृभूमि माने। धर्म-भूमि तो उनकी अरब बनी ही हुई है। हिन्दु उनके इस मनोभाव के सुधार मे उनकी तरह तरह से मदद करे। पर यह काम इसके बजाय अधिक समय-साध्य और श्रम-साध्य है कि उन्हें हिन्दुओं की तरफ से अभय-का आश्वासन दिलाया जाय। लोकमान्य ने लखनऊ मे अधिक प्रतिनिधि देकर मुसल्मानों को यही आश्वासन दिया था; महात्मा जी ने यह कह कर कि हकीम अजमल खॉ के हाथ मे कलम दे दो, लोकमान्य की ही आत्मगत बात कही और की थी। मुसल्मानो के अविश्वास को दूर करने का और अपने अंत:करण की निर्मलता के परिचय देने का इससे अच्छा साधन हिन्दुओं के पास काई न था।

लोकमान्य ने भूल की—

मगर लखनऊ की बुद्धिमता देहली मे 'भूल' के नाम से पुकारी गई; कांग्रेस को हिन्दुओं का शत्रु बताया गया और बेचारी अक्ल पर जोश और गुस्से ने क्या क्या इल्जाम नहीं मढ़े। राजनीति मे लोकमान्य के चेले, दूरंदेशी में उनकी अकल के कायल, खड़े हो होकर उन्हे कोसने लगे और उनकी राय मे महात्माजी के दिमाग मे तो अक्ल और दूरंदेशी नाम की और दिल मे हिन्दू-

हित या हिन्दू-धर्म के अभिमान नाम की कोई चीज़ ही नहीं रह गई। वे भोले-भाले, मुसल्मानों के दाँव को न समझने वाले, मुसल्मानों का पक्षपात करने वाले, बताये गये। हकीम अजमल खाँ के हाथ में कलम देने की बात तो मानों हँसी में ही उड़ा दी गई! दक्षिण अफ्रिका में बोअरों और अंगरेज़ों से लोहा लेने वाले और हिन्दुस्तान मे दो ही साल में तहलका मचा देने वाले बेअक्ल और कायर गाँधी की सलाह, आपस में ही दुलत्तियाँ झाड़ने वाले—गुलामी की बेड़ियों मे कसे हुए, अपने गनीम से लड़ना छोड़कर, ज़रूरी रण-क्षेत्र से भागकर, छोटे छोटे स्वार्थों के लिए महान् लाभ को ठुकरा देने वाले, इन समझदारों और सूरमाओं की नज़रों में क्यों जँचने लगी? वे सोचते तो, कि महात्मा जी ने हकीम साहब के ही हाथ में कलम क्यों दी, ख्वाजा हसन निज़ामी के हाथ मे क्यों नहीं दे दी? वे जानते थे कि हकीम अजमल खाँ चाहे अपनी कौम को ठीक राह पर कायम रखने वाले समर्थ पथ-दर्शक न साबित हुए हों, पर अक्लमन्दी, दूरंदेशी और सब से ज्यादह हिन्दुओं के किये एहसानों के प्रति कृतघ्नता का दिवाला उन्होंने नहीं निकाल दिया है और वे आँखें मूँद कर, बिना हिन्दू नेताओं की सलाह लिये, या उनके मनोभावों का काफ़ी ख़याल किये, मुसल्मानों के लिए सारा राज न सौंप देंगे और हिन्दुओं को राह का भिखारी न बना देंगे। खैर—

धर्म और जाति—

हाँ, तो मेरा कहना यह है कि शान्ति और गंभीरता के साथ मुसल्मानों के भय की जड़ को काटने के बदले, हम ने जोश और

गुस्से में आकर उसका ऐसा इलाज करना शुरू किया जिससे मर्ज दिन दिन बढ़ता ही चला गया। हमारे शुद्धि और संगठन उनके दिल के दर्द की ठण्ढी और सच्ची दवा न हुई। तबलीग़ तनजीम और शुद्धि-संगठन का वर्तमान भाव और रूप, धर्म से कोसो दूर है, न वह धर्म-भाव से प्रेरित ही है। धर्म का अर्थ है, धर्म के उच्च सिद्धान्त जैसे धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, पवित्रता, इन्द्रिय-निग्रह, सत्य, अक्रोध आदि। जो लोग इन नियमो का पालन या पालन करने का प्रयत्न करते हैं वे धार्मिक कहलाते हैं। जब उनकी संख्या ज्यादह हो जाती है, तब वह एक जाति बन जाती है। हिन्दू-जाति हिन्दू-धर्म के उच्च सिद्धान्तो के पालन का दावा करती है। इसलिए वह हिन्दू-धर्म की अनुयायिनी कहलाती है—इसीलिए उसका नाम हिन्दू है। उसी तरह मुस्लिम-जाति भी इसीलिए मुस्लिम कह-लाती है कि वह इस्लाम के अनुगमन का दावा रखती है। हर जाति ने अपने अपने मज़हब के सूचक कुछ चिह्न बना लिये है जैसे शिखा, दाढ़ी, आदि और उन जातियो के धर्म-नेताओ ने उनका धार्मिक अर्थ भी बना रक्खा है। कोई जाति तभी तक अपने नाम का सच्चा दावा कर सकती है जब तक वह उस धर्म के सिद्धान्तों और नियमो का पालन करती है। हिन्दू-जाति का महत्व इसी बात मे है कि वह हिन्दू-धर्म की प्रतिनिधि समझी जाती है। यही बात हर जाति पर घटित होती है। कोई जाति अपने धर्म-सिद्धान्त से च्युत या विमुख होकर अपने को उस धर्म की प्रतिनिधि नही कह सकती। यदि कोई हिन्दू न ईश्वर को माने, न सत्य की परवा करे, न सदाचारी हो; पर लम्बी चोटी

रखता हो, दस दफ़ा नहाता हो, वेद-मंत्र सस्वर बोलता हो, तो क्या वह सच्चा हिन्दू है ? इसी तरह क्या वह मुसलमान भी सच्चा मुस्लिम है जो न एक खुदा को मानता हो, न हर मुसलमान के साथ भाई का सा बरताव करता हो, न सचाई और ईमानदारी का पाबंद हो, पर जो लंबी दाढ़ी रखता हो, पाँच बार नमाज पढ़ता हो, हाथ में टेढ़ा मेढ़ा डण्डा लिए गली गली इस्लाम और पैग़म्बर साहब की दुहाई देता फिरता हो ? नहीं। कहने की गरज़ यह कि धर्म के दो भाग होते हैं—(१) धर्म-तत्व, धर्म-सिद्धान्त और (२) उनको अमल में लाने के तरीके या व्यवहार-शास्त्र अथवा धर्म-शास्त्र। धर्म-शासन धर्म-तत्व की पाबंदी के लिए बनाये गये हैं। धर्म-शास्त्र धर्म-तत्व तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनाता और बताता है। अतएव सीढ़ियों को मकान समझ लेना जिस तरह भूल और ख़तरनाक है, उसी तरह, दाढ़ी-चोटी, कोरा स्नान—ध्यान, बाजा आरती, आदि को धर्म का मूल स्वरूप या मुख्य अंग मान लेना भी भारी ग़लती है और भयावह है। 'न लिंगं धर्म-कारणम्'। इसी तरह धर्म-तत्वों के पालन की ओर, उनके ज्ञान का प्रचार करने की ओर ध्यान न देकर, उनके नाम पर दाढ़ी—चोटी रखवालेने वालों की अंधाधुन्ध संख्या बढ़ाने की कल्पना करना धर्म से कोसों दूर है। अज्ञ या अल्पज्ञ लोग धर्म का नाम सुनते ही पागल हो उठते हैं, इसलिए उन्हें एक धर्म के दायरे से हटाकर दूसरे धर्म में लाने के लिए फुसलाना, या धर्म के नाम पर उन्हें लड़ा मारना, धर्म के साथ भयंकर खिलवाड़ करना है।

शुद्धि-तबलीग़ का अर्थ और स्वरूप—

शुद्धि के मानी हैं, शुद्ध होने की क्रिया। शुद्ध वही होना चाहता है जो अशुद्ध हुआ हो, पतित हुआ हो, जिसने कोई बुरा काम किया हो, जिसके लिए उसे पश्चाताप हुआ हो, जो उस बुराई से छूट जाना चाहता हो और फिर उसमें न पड़ना चाहता हो। अर्थात् शुद्धि का भाव किसी के मन की, हृदय की चीज़ हुई। दूसरा आदमी उसको उसकी बुराई बता सकता है, समझा सकता है, उसके अन्दर पश्चाताप का भाव पैदा कर सकता है, और उसके पैदा हो जाने पर शुद्धि की विधि तथा आगे न बिगड़ने का रास्ता बता सकता है। यह दूसरा आदमी स्वयं बहुत शुद्ध, ज्ञानी और समर्थ होना चाहिए। यह तो हुआ शुद्धि का तात्विक रूप। आजकल शुद्धि का व्यावहारिक रूप हो गया है—एक धर्म की सीमा में गये आदमी को दूसरे धर्म के क्षेत्र में लाते समय की गई बाहरी विधि या संस्कार। मुसलमान इसीको तबलीग़ कहते हैं। इस शुद्धि और तबलीग़ के मूल में एक तो यह कल्पना गृहीत है कि हमारा धर्म अच्छा है, दूसरे का धर्म बुरा है, दूसरे यह भाव वर्त मान है कि किसी तरह हमारी जाति की संख्या बढ़े, वह विस्तृ और मजबूत हो। पहली बात धर्म से संबंध रखती है, दूसरी राज नैतिक या महत्वाकांक्षा या स्पर्द्धा या प्रतीकार से।

मेरा धर्म अच्छा, तेरा बुरा—

'हमारा धर्म अच्छा है, दूसरे का बुरा है' यह भावना कि के स्वाभिमान की सूचक या पोषक भले ही हो, धर्म का वह क

खास अंग नहीं है। यह 'धारणा' तो मनुष्य की इस योग्यता, अनुभव और विश्वास को सूचित करती है कि उसने सब धर्मों को टटोल और परख देखा और उसे इसी धर्म में सच्ची सुख-शान्ति मिली। या तो मनुष्य स्वानुभव से यह घोषणा कर सकता है या दूसरों के वचनों पर विश्वास रख के कहता है। अपने धर्म को अच्छा और दूसरे को बुरा कहने वाले अधिकांश लोग अक्सर दूसरी श्रेणी के हुआ करते हैं।

दूसरे को अपने मज़हब में क्यों लाना चाहते हैं?

दुनियाँ में कई धर्म हैं। वे क्या हैं? क्यों हैं? यदि ईश्वर एक है, और धर्म उस तक पहुँचने का मार्ग है, तो उसके रास्ते इतने जुदे क्यों हैं, और यदि जुदे हैं तो उन पर चलने वालों को खुद ईश्वर तक पहुँचने की अधिक चिन्ता और बेचैनी होने के बजाय दूसरों को अपने रास्ते ले जाने की इतनी छटपटाहट क्यों है? इसके अंदर दूसरे के गलत या टेढ़े रास्ते से और उसकी तकलीफ़ों से किसी को बचा कर अपने अच्छे और सरल रास्ते से ईश्वर तक पहुँचाने की सज्जनोचित स्वाभाविक उपकार-भावना प्रधान है या किसी तरह अपने गोल को बड़ा और मज़बूत बना-कर राह का आनंद और ऐश्वर्य्य भोगने की महत्वाकांक्षा है, यह विचारने योग्य है। यदि उपकार-भावना है तो फिर इसमें आतुरता, अधीरता, रोस, कटुता, प्रतिहिंसा और मरने मारने की की तैयारी क्यों? यदि ऐश्वर्य की महत्वाकांक्षा है, तो धर्म की ओट में क्यों?

धर्म क्या है ?

प्राणिमात्र का धर्म एक है—विविधताओं से एकता की ओर जाना—एकता में उनकी हल-चल का पर्यवसान होना। मनुष्य-मात्र का धर्म एक है—अपने जीवन-लक्ष्य को पहुँचना। मनुष्य का लक्ष्य क्या है—तमाम बंधनो, तमाम दुःखो, तमाम बुराइयों, तमाम कमजोरियो से सदा के लिए छूट जाना, इसी को हिंदू-धर्म मे मोक्ष कहा है। व्यवहार की सरल भाषा मे इसे हम यो कह सकते हैं—धर्म पूर्ण स्वतंत्रता की सड़क है; धर्म ऐहिक सुख और पारमार्थिक सुख का राजमार्ग है; धर्म नीचे गिरे हुओ को ऊपर उठाने की सीढ़ी है; धर्म प्राणिमात्र के हित का साधन है। इसी को दूसरी भाषा मे लोग कहते हैं—धर्म ईश्वर तक पहुँचने का रास्ता है, धर्म सत्य के पहचानने का साधन है, धर्म आत्मसाक्षात्कार का उपाय है। और दूसरे शब्दो मे कहे तो धर्म उन नियमो के समूह को कहते है, जिनका पालन कर मनुष्य अपने शरीर, मन और आत्मा का पूर्ण विकास कर सकता है, स्वयं अपने को तथा दूसरो को सुखी बना सकता है। अपने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए धर्म मनुष्य को आज्ञा देता है कि तुम इन इन गुणो को, शक्तियों को प्राप्त करो और इन इन दोषों और बुराइयों को छोड़ो। जब धर्म मनुष्य की लक्ष्य-संबंधी बातो और भावों को स्थिर करता है, तब उन्हें धर्मतत्व या धर्म-सिद्धान्त कहते हैं; जब धर्म यह बताने लगता है कि अपने लक्ष्य तक तुम इस तरह इन इन बातो को करते और इन इन बातो को छोड़ते हुए पहुँच सकोगे, तब उसे धर्म-शास्त्र कहते हैं। धर्म-तत्व अटल है, त्रिकालाबाधित

है; धर्म-शास्त्र परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है—परिवर्तनशील है।

ईश्वर एक है—

हिंदू मुसलमान, ईसाई, यहूदी, आस्तिक, नास्तिक सब प्रकार के पंथ और वर्ग के लोगों को ध्यान में रख कर उनके सर्व-सामान्य, सर्व-सम्मत लक्ष्य को इस भाषा में व्यक्त कर सकते हैं—मनुष्य का लक्ष्य है—सत्य को अनुभव करना, सत्य को पाना, सत्य पर आरूढ़ रहना, सत्यमय हो जाना। जो सत्य है वही ईश्वर हो सकता है और ईश्वर के सिवा सत्य कुछ हई नहीं। जिसे तत्व-ज्ञानी सत्य के नाम से पुकारता है; अध्यात्म-शास्त्री आत्मा के नाम से पहचानता है; भक्त ईश्वर के नाम से बुलाता है; नास्तिक प्रकृति या शक्ति के नाम से जिसकी घोषणा करता है, हिन्दुओं ने जिसे परमेश्वर कहा है, ब्रह्म कहा है, अंग्रेजों ने जिसे गॉड समझा है; मुसल्मान जिसे अल्लाह के नाम से पुकारते हैं, वह वही सत्तत्व, महत्तत्व है जिसका अनुभव प्रत्येक विचारशील और भक्त सृष्टि की सारी विविधता, विचित्रता और विरोध-प्रचुरता में करता है। भक्त अपनी भावुक रसमयी वाणी में उसे चाहे जैसा सुंदर काव्य मय रूप दें; पर वह चीज़ वही है जिसे भिन्न भिन्न लोग अपनी योग्यता, रुचि, अनुभव और ज्ञान के अनुसार जान कर भिन्न भिन्न नामों से उसका परिचय कराते हैं। जिन जिन महापुरुषों ने उसे पहचाना है; उस तक जाने का मार्ग जिन्होंने लोगों के सामने रख दिया है तथा जो कहते हैं कि भाई, यही वहाँ तक जाने का

रास्ता है, वे भिन्न भिन्न धर्म-मतों के प्रवर्तक या सुधारक हुए हैं। मुहम्मद, ईसा-मसीह, बुद्ध, महावीर, शंकराचर्य, नानक, दयानन्द आदि इसी कोटि मे आते हैं। इनके बताये तरीक़ों से चलने का दावा रखने वाले अपने को उनका अनुयायी मानते है।

धर्मपन्थ और उनमें साम्य—

इस विवेचन से हम इस नतीजे पर पहुँचते है कि भिन्न भिन्न धर्म-मत एक ही परम सत्य या तत्व तक पहुँचने के भिन्न भिन्न मार्ग हैं और इसीलिए उनका दूसरा नाम हिन्दुओं के यहाँ पड़ गया है—पन्थ। वर्तमान शुद्धि और तबलीग़ आन्दोलनों का सम्बन्ध इन्हीं धर्म-पन्थों से है। एक पन्थवाला अपने पन्थ को अच्छा समझता है और चाहता है कि दूसरा भी इसी रास्ते चले। इस शुद्ध इच्छा पर कोई कैसे ऐतराज़ कर सकता है? जब वह यह कहता है कि मेरा ही पंथ अच्छा है, दूसरे का बुरा है और चाहता है तथा जोरों से कोशिश करता है कि दूसरे पंथो के लोग अपने पंथो को छोड़ कर हमारे पंथ मे आजावे, तब मनुष्य के सर्व-सामान्य धर्म की आत्मा को आघात पहुँचता है। यदि हम मौजूदा धर्म-पन्थों के मनुष्य के लक्ष्य तथा उसकी पूर्ति के अनिवार्य साधन से संबंध रखने वाले सिद्धान्तों और विचारो को देखे तो हमें उनमें प्रायः साम्य दिखाई देता है। सत्य दया, परोपकार, पवित्रता, शान्ति, नम्रता, इन गुणों या नियमों की महत्ता से किस धर्मपन्थ ने इनकार किया है—किसने इनकी आवश्यकता का प्रतिपादन नहीं किया है? यदि किसी ने इनमें

से अथवा धर्म-नियमों में से किसी एक पर कम या ज्यादह जोर दिया है तो यह उसकी विशिष्ट परिस्थिति के कारण से हुआ है—यह धर्म के ऊँचे तत्वों का विषय नहीं, धर्म-शास्त्र का—धर्म को असल मे लाने के तरीके का विषय है और इसे धर्म के प्राण-रूप नियमों की उच्चता नहीं दी जा सकती। वर्तमान सब धर्म-पन्थ इतनी बातों में प्रायः एक मत हैं—(१) सत्य या ईश्वर है (२) मनुष्य पवित्र हुए बिना उस तक नहीं पहुँच सकता; (३) सदाचार पवित्रता का सब से बड़ा साधन है। ये तीन सिद्धान्त सबको मान्य हैं। अब इस बात मे आगे चलकर भले ही मत-भेद हो कि सदाचार मे किन किन बातों का कहाँ तक समावेश होता है—धर्म-संकट या कर्तव्या-कर्तव्य का प्रश्न उपस्थित होने पर कौन धर्माचार्य या धर्म-शास्त्री किस बात को किस हद तक जायज या नाजायज समझता है। व्यावहारिक रूप से यह प्रश्न नीति-शास्त्र या समाज-शास्त्र का हो जाता है। और जो धर्म-प्रवर्तक या धर्माचार्य जितना ही अधिक सत्य को, परमतत्व को, उज्ज्वल और संपूर्ण रूप में देखता होगा, और मनुष्य-समाज को उसकी प्रतीति करा देने के लिए जितना ही अधिक उत्सुक होगा, जितना ही अधिक उसे मनुष्य-समाज की नैतिक स्थिति और मनोभूमिका का परिज्ञान होगा, जितना ही अधिक उसका प्रभाव मनुष्य-समाज पर होगा, उतनी ही अधिक ऊँची कल्पना वह उसके सामने रक्खेगा और उतना ही अधिक जोर वह उस पर देगा। अस्तु!

सच्चा धार्मिक क्या करेगा ?

कहने का मतलब यह है कि, जब कि मौजूदा धर्म-पंथों के

उच्च नियम प्रायः एक से हैं और उनके असल की तफ़सीली बातों मे अगर मत-भेद है तो फिर इतने ही पर दूसरे धर्म को 'बुरा' कहना कहाँ तक धर्म-संगत है। एक धार्मिक पुरुष तो यही कह सकता है—'भाई, सब धर्म पन्थ एक ही ईश्वर तक—मनुष्य के अन्तिम लक्ष्य तक, पहुँचाते है। हमे उचित है, जरूरत केवल इसी बात की है कि हम उसके सच्चे, ऊँचे रूप को समझे और सचाई के साथ उसका पालन करें—हम अपने तई, दुनिया के तई और ईश्वर के तई सच्चे बनकर जिन्दगी बसर करे।' ज्यादह से ज्यादह वह इतना और कह सकता है—'लेकिन भाई, मेरा रास्ता उससे भी अच्छा और आसान है। तुम्हारे धर्म मे यदि इतनी खूबी और आ जाती, जो मेरे मे है, तो क्या बहार होती?' आगे चलकर यदि वह इतना और भी कह दे कि 'इसलिए तुम मेरे ही रास्ते क्यो नही चलते?' या आग्रह करे कि 'चलो।' तो तत्वतः उसे कोई बेजा नही कह सकता; पर भावतः उसकी धार्मिकता में कमी जरूर पैदा हो जाती है। सच्चा धार्मिक दूसरे धर्म-मतो को, जो कि मूलतः बुरे नहीं हैं, मिटाने, गिराने या बदनाम करने की कोशिश न करेगा, बल्कि उन्हे सुधारने और अपने मत की कोटि मे ला देने की चेष्टा करेगा। वह अच्छाई को खोजेगा, जहाँ कही मिल जायगी, उसकी कद्र करेगा, औरों को उसकी ओर प्रेरित करेगा और यदि कही बुराई दीख पड़ी तो उसे फैलाने के बजाय उसे दूर करने की कोशिश करेगा। उसका हृदय प्रेम, सहानुभूति और सेवा के भाव से भरा होगा। सहिष्णुता उसके जीवन का धर्म होगा। सहिष्णुता का अर्थ ही यह है

कि हम दूसरे को भी उतनी ही आजादी देते है जितनी कि हम उससे लेना चाहते हैं। धार्मिक जीवन की शुरूवात ही सहिष्णुता से होती है। जो मनुष्य धमकी, जब्र, या अनीति-पूर्ण गंदे तरीकों से दूसरों को धमका, बहका या फुसलाकर अपने धर्म-मत में मिलाता है, जो शास्त्र या ग्रन्थ ऐसा करने की इजाजत देता है या उसे बरदाश्त करता है, वह मनुष्य-धर्म के अज्ञान या उन्माद मे धर्म की हत्या करता है, वह शास्त्र या ग्रन्थ 'धर्म' विशेषण से विभूषित होने के योग्य नहीं है—यदि किसी परिस्थिति में, किसी कारण से कुछ नाजायज बातों को भी किसी ने बरदाश्त कर लिया या जायज मान लिया तो अब उसमें संशोधन की भारी आवश्यकता है। उसका संशोधन न करना, अपने धर्म मत की जड़ को हिलाने का अवसर देना है।

धार्मिक शुद्धि क्या है?

छानबीन हमें इस परिणाम पर पहुँचाती है कि जब कि मूलतः अच्छे धर्म-पन्थ को 'बुरा' कहना ही आक्षेप-योग्य है; तब उसकी बुनियाद पर दूसरे को अपने मत में मिलाना कहाँ तक धर्मानुमोदित हो सकता है? फिर किसी धर्म-मत मे रहना इस अर्थ में बुरा या पाप तो हुई नहीं, जिस अर्थ में कि नीति या सदाचार से पतित होना है। शुद्धि तो पतित और पापी की ही हो सकती है। शुद्धि तब भी हो सकती है जब मनुष्य खुद ही किसी धर्म-मत में रहना पाप समझने लगा हो। पर उस धर्म-मत के मूल सिद्धान्त में यदि कोई ऐसी बुराई नहीं है तो कहना होगा

कि उस शुद्धि चाहने वाले को अपने असली धर्म का यथार्थ ज्ञान नही है। अतएव शुद्धि करने वाले का पहला कर्तव्य यह है कि वह पहले उसे अपने असली धर्म का ज्ञान करावे। इसी बात को यदि मै इस भाषा में पेश करूँ—कि एक मुसल्मान को अथवा हिन्दू को चाहिए कि किसी की शुद्धि करने के पहले यह देख ले कि उसे अपने असली धर्म का यथार्थ ज्ञान है वा नही और वह उससे रहना पाप या बुरा क्यो समझता है, और यदि उसे पूरा ज्ञान नही है, या भ्रम है तो उसे दूर कर दे—और फिर उसकी शुद्धि करे--तो पाठक तुरन्त जान लेंगे कि किसी की शुद्धि कितनी मुश्किल है; और सच्ची शुद्धि और वर्तमान शुद्धि तबलीग़ मे कितना आकाश-पाताल का अन्तर है। वह यह भी देख लेगा कि धर्मान्तर या उसके लिए किये गये शुद्धि-संस्कार का संबंध धर्म और धार्मिकता से उतना नही है जितना समाज और सामाजिक सुविधा-असुविधा से है। वर्तमान शुद्धि तबलीग़ एक सामाजिक या राजनैतिक आन्दोलन है। धर्म की बुनियाद पर वह ठहर नही सकता। इसीलिए धार्मिक दृष्टि से वह सदोष है और धार्मिक मनुष्य उसके इस दोष को सहज पहचान सकता है। शुद्ध धार्मिक दृष्टि से तो मनुष्य को अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए न तो किसी धर्म-मत की चिट अपने ललाट पर लगाने की ज़रूरत है और न, यदि वह पहले से किसी मत को अपना चुका है, तो उसे बदलने की ही ज़रूरत है, बशर्ते कि वह अपने लक्ष्य तक पहुँचने की शर्तों का ईमानदारी से पालन करता हो।

कोई धर्मान्तर क्यों करता है?

फिर धर्मान्तर करना एक बात है; धर्मान्तर कराना दूसरी बात है; समझ के साथ धर्मान्तर करना एक बात है; लालच से करना दूसरी बात है; समझा-बुझाकर धर्मान्तर कराना एक बात है; फुसलाकर, धमकी देकर या बल-पूर्वक धर्मान्तर कराना और ही चीज है। भला, कोई आदमी धर्मान्तर क्यों करता है? सब धर्मों का लक्ष्य तो एक ही है, उनके मुख्य सिद्धान्तों में भी प्रायः साम्य है। फिर क्या वजह है कि कोई एक पन्थ को छोड़ कर दूसरे में जाना चाहेगा? सिर्फ एक ही कारण हो सकता है। यदि उस धर्म के सिद्धान्तों के पालन का तरीका उस समाज में इतना बिगड़ा हुआ हो कि वह उसमें रहकर उनका पालन न कर सकता हो, या उनका पालन करते हुए उसे अज़हद तकलीफ़ों का सामना करना पड़ता हो, जिन्हें बरदाश्त करने के लिए वह तैयार न हो, न वह उसमें सुधार करने में ही सफल मनोरथ हो पाता हो, तो वह अपनी आत्मा की भूख बुझाने के लिए उस धर्म, पन्थ, या समाज की शरण में जाता है जहाँ उसे शान्ति और आराम के साथ उनके पालन करने की सुविधा मिल जाती है। जिनमें अपने धर्म की बिगड़ी व्यवहार-पद्धति को सुधारने की शक्ति होती है, जो उससे मिलने वाले कष्टों को सहने या उनका मुक़ाबला करने का सामर्थ्य रखते हैं, वे तो ईसामसीह, सुकरात, दयानंद, मीरा, महावीर, बुद्ध, प्रह्लाद होते हैं, पर जो अपने अंदर इतनी शक्ति का अनुभव नहीं करते, उनके लिए धर्मान्तर के सिवा गुज़र नहीं। पर यह धर्मान्तर एक तो स्वेच्छापूर्वक

खुशी खुशी होता है और दूसरे वह उस पन्थ के मूल सिद्धान्तों के कारण नहीं, बल्कि उनके व्यवहार की प्रणाली के कारण होता है। दूसरी भाषा में इसे यों कह सकते हैं कि वह धर्मान्तर नहीं, समाजान्तर होता है। यदि उसके पन्थ का धर्म-शास्त्र या समाज-व्यवहार बदल जाय तो फिर शायद वह अपने समाज को छोड़ना न भी चाहे। इसीलिए मै कहता हूँ कि धर्मान्तर या शुद्धि का संबंध धर्म से नही; वह सामाजिक बात है और आजकल वह राजनैतिक चीज हो गई है। हाँ, सामाजिक या राजनैतिक सुविधा-असुविधा के ख़याल से शुद्धि और धर्मान्तर का महत्व और स्थान समझ मे आ सकता है।

धर्म के नाम पर शुद्धि तबलीग़ से हानियाँ—

यदि वर्तमान शुद्धि-तबलीग़-आन्दोलनो का सामाजिक और राजनैतिक ही हेतु है तो फिर यह सर्वथा उचित है कि जनता के सामने वह धर्म के रूप मे पेश न किया जाय। धर्म के नाम पर धर्मान्तर अथवा शुद्धि-तबलीग के प्रचार करने के भयंकर दुष्परिणाम होते है, और हुए है।

दुनियाँ के बड़े बड़े धर्म-युद्ध इसी भ्रम या नीति के कृतज्ञ है। इस्लाम की यह प्रवृत्ति कि गर्दन मार कर भी मुसल्मान बनाओ, इसी ग़लती का ढिंढोरा पीट रही है। अशोक ने इसी तरह के धर्म प्रचार या धर्मांतर के भ्रम मे कलिन्द मे अगणित जन-संहार किया। इसी अज्ञान के कारण वेश्याओ के द्वारा, रिश्वते दे दे कर, तथा औरतो को उड़ा उड़ा कर भी इस्लाम का प्रचार करने की सलाह देते हुए

ख्वाजा हसन निजामी के रोंगटे खड़े न हुए—धर्म और राजनीति की इसी भूल-भुलैयाँ के बदौलत, दोनो की ठीक मर्यादा न जानने के कारण, अखबारों के संवाददाता शुद्धि-तबलीग और दंगो के समाचार सत्यासत्य की परवा किये बिना, उनके भीषण परिणामों का खयाल किये बिना भेजते हैं और सम्पादक अपने जोश में भड़कीली टिप्पणियाँ लिख मारते है, इसी के कारण मुक़दमों में झूठी गवाहियाँ देना, झूठे मुक़दमे बनाना, नमाज़, बाजे, आरती, या पेड़ कटने जैसी नकुछ बातों को धार्मिक अधिकार का रूप देना और उनके लिए बड़े बड़े हुल्लड़ खड़े कर देना—इन भयंकर बातों मे किसी को, धर्म या नीति या बुद्धि के विरुद्ध कोई बात ही नहीं दिखाई देती। इसी के कारण टुट पूंजिये उपदेशक और कार्य-कर्त्ता सड़ी सड़ी बातों को धर्म का विशाल और पवित्र रूप देकर जनता के धार्मिक भावों का अपने मतलब के लिए खूब दुरुपयोग करते हैं। इससे जनता को भी धोखा होता है, उनके धर्म संबंधी घोर अज्ञान में धर्मान्धता का नया भूत संचार कर जाता है, जिससे अन्ततोगत्वा धर्म का गला घुटने लगता है; दूसरे धर्म वालों की दृष्टि में हमारे धर्म की बहुत ही निकृष्ट, घृणित और मलिन मूर्ति आनी रहती है जो कि एक जाति या मनुष्य-समाज की हैसियत से हमें उनकी नजर से गिरा देती है। इसका बहुत बुरा असर हमारे सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक जीवन की प्रगति पर होता है। यदि हम धार्मिक या सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों को उनके स्पष्ट रूप में और स्पष्ट शब्दों में लोगों के सन्मुख रक्खें तो उन्हें यह ठीक ठीक

दिखाई पडता रहेगा कि किस हद तक, किस बात को, कितना महत्व दें। उनके विचार सुलझे हुए और साफ़ रहेगे तो इससे हमारे धर्म और समाज दोनों की अच्छी सेवा भी होगी और हम अनेक हानियो से बच जायँगे।

धर्मान्तर की राजनैतिक आवश्यकतायें हैं ?

सामाजिक या राजनैतिक दृष्टि से जब शुद्धि और तबलीग़ की आवश्यकता पर विचार करने लगते है, तो पहला प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मुसल्मानो या हिन्दुओं की वे सामाजिक या राजनैतिक आवश्यकताये क्या हैं जिनके लिए इतने बड़े पैमाने पर धर्मान्तर—नहीं, इसे समाजान्तर या जाति-परिवर्तन कहना चाहिए—शुद्धि-आन्दोलन खड़ा करना चाहिए ? यदि भारत में कुछ ऐसी जातियाँ या लोग है, जो न पूरे हिन्दू-समाज के अन्तर्गत हैं, न पूरे मुसल्मान-समाज के; और इस कारण इन्हे सामाजिक असुविधाये है, तो या तो यह प्रश्न दोनो जातियों के मुखिया मिलाकर उनकी राय से तय कर लें, या उन्ही के निर्णय पर छोड दे। यदि प्रश्न उनकी सुविधा का है तो हिन्दू-मुसल्मानो को उनके धर्मान्तर या शुद्धि के लिए इतने जबरदस्त आन्दोलनों की क्या जरूरत ? यदि प्रश्न हिन्दुओ या मुसल्मानो की संख्या, या बल का है तो आखिर मुसल्मान या हिन्दू चाहते क्या हैं ? यदि दोनों मे से किसी की, या दोनो की यह अभिलाषा हो कि हिन्दुस्तान मे दो में से एक ही जाति रहेगी—एक दूसरी को बल-पूर्वक हड़प जायगी, तो ऐसे ख़याल रखने वाले

पागलखानों में भेज देने के लायक है। हिन्दुओं और मुसलमानों की राजनैतिक आकांक्षायें न तो हिन्दू-राज या हिन्दू-शक्ति हो सकती है, न मुस्लिम-राज या मुस्लिम-शक्ति हो सकती है। यह सवाल या तो तब खड़ा हो सकता था, जब दोनों अपने बला-बल को आजमाने और खुल्लमखुल्ला दो दो हाथ करने के लिए आज़ाद थे, या शायद तब हो सके, जब फिर वे उसी तरह आज़ाद हो जायँ। आज तो दोनो की पृथक् पृथक्, और सम्मिलित, एक ही राजनैतिक आकांक्षा या आवश्यकता हो सकती है—स्वराज्य। और स्वराज्य के लिए दोनों का अपनी अलहदा अलहदा संख्या और बल बढ़ाना—अलग जत्थेबंदी और फिरका बंदी करना सोभी ऐसी जिससे आयेदिन दोनों में हाथा-पाही होती हो, न केवल अनावश्यक है, बल्कि महा हानिकर है, यह हम इन दो तीन वर्षों के इतिहास से, स्वराज्य को दूर हटाकर, अच्छी तरह देख ही रहे हैं।

हिन्दू जाति रसातल को जा रही है—

किन्तु इस पर कहा जाता है—'हिन्दू-जाति तो रसातल को जा रही है, दिन दिन घट रही है, मुसल्मान अपना काम दिन दिन करते जा रहे हैं और आप हम पर धर्म-कर्म की सूक्ष्म और आदर्श-रूप बातों का लेक्चर झाड़ते हैं। आपको पड़ी है अपने आदर्शों की, हमें पड़ी है अपनी ज़िन्दगी की! मैं इस जाति-चिन्ता की क़द्र करता हूँ; पर मेरी समझ में नहीं आता कि केवल संख्या घटने से कोई जाति कैसे रसातल को जा सकती है और संख्या

बढ़ने से कैसे ऊँची उठ सकती है। संख्या गुण पर अवलंबित रहती है। हिन्दू-जाति में जो आज २२ करोड़ लोग है, उनके पूवज हिन्दू-धर्म के सच्चे प्रतिनिधि, ऋषि-मुनियो और आदर्श-राजाओ के पवित्र आचरण और गुण-बल से आकर्षित हुए, और उन्ही के तपोबल से आज भी हमे अपने शिखा-सूत्र का अभिमान है। इस्लाम मे या ईसाई-धर्म मे यदि ऊँचे और पवित्र सिद्धान्त न होते और यदि मुसलमानो मे पहुँचे हुए सन्त-फ़कीर न हुए होते तो कोरे तलवार-बल पर न आज इतने मुसलमान दुनियाँ मे दिखाई पड़ते और न क़ायम रहते। फ़र्ज़ कीजिए कि भारत के सभी मुसलमानो और ईसाइयो ने हिन्दू-धर्म ग्रहण कर लिया और हिन्दू-जाति मे आ गये, पर वे तथा उनके संग से अन्य हिन्दू हिन्दू-धर्म के उच्च सिद्धान्तों का पालन छोड़कर, केवल शिखा-सूत्र धारण भर के लिए अपने को हिन्दू कहलाने लगे तो, क्या यह हिन्दू-जाति की, हिन्दुत्व की, हिन्दू-धर्म की उन्नति हुई? हिन्दू-जाति और हिन्दुत्व आख़िर है क्या? हिन्दू-धर्म मे से यदि 'सर्वात्मभाव' 'सर्वभूतहित' 'अहिंसा परमो धर्मः' 'नास्ति सत्यात्परो धर्मः' ये तत्व और भाव निकाल दिये जायँ तो फिर हिन्दू धर्म और क्या रह जायगा? हिन्दुत्व मे से यदि इन आदर्शों और उनके आचारो को अलग कर दिया जाय तो फिर हिन्दुत्व और क्या रह गया! हिन्दू-जाति मे से यदि इन तत्वो, भावो और आदर्शों के कायल और पालन करने वाले अलहदा कर दिये जायँ तो फिर हिन्दू-जाति मे क्या हिन्दू-पन रह गया? हिन्दू-जीवन का मूल्य हिन्दू आदर्शों के

कारण है। उसकी अवहेलना या उपेक्षा कर के हम कैसे हिन्दू-जाति को जीवित रख सकेंगे ? यदि हम अपने आदर्श और सिद्धान्त के पक्के रहेंगे, रहने की आवश्यकता का प्रचार करेंगे, लोगों को उसके लिए तैयार करेंगे तो न मुसलमान और न ईसाई हमारी संख्या को कम कर सकेंगे। यदि हम मौजूदा हिन्दुओं को अपने धर्म में दृढ़ रहने की शिक्षा और सुविधा न देंगे और केवल धर्मान्तर के द्वारा दूसरों को ही अपने में मिलाने का यत्न करते रहेंगे तो न घर के रहेंगे न घाट के। सामाजिक-सुधार और धर्माचरण द्वारा हमें अपने घर को पहले साफ़ और मजबूत बनाना चाहिए।

क्या प्रतिकार भी न करें ?

इस पर यह पूछा जाता है कि हिन्दुओं के सब तरह ख़ामोश रहने और ग़म खाने पर भी यदि मुसलमान उपद्रव और अत्याचार करना न छोड़े, हिन्दू स्त्रियों पर जब्र करें, मन्दिरों को भ्रष्ट करें तो फिर भी क्या हिन्दुओं को माला हाथ में लेकर बैठे रहना चाहिए ? इस पर मैं कहूँगा, यदि हिन्दू अपनी तरफ़ से चिढ़ाने या उत्तेजना देने का कोई मौका न दें, और फिर मुसलमान ज्यादती करें तो समाज की हैसियत से हिन्दुओं का यह कर्तव्य है कि वे सब तरह अपनी, अपने आश्रितों की, अपने देव-मन्दिरों की रक्षा करें। यदि वे शान्ति के उपायों से रक्षा न कर सकें—और देखते हैं कि आज वे शान्ति-शस्त्रों को हाथ में लेने की शक्ति अपने अंदर नहीं पाते हैं—तो प्रहार करके भी रक्षा करना

उनका धर्म है। शान्ति या अहिंसा का अर्थ डर कर भाग जाना, या दब छिपकर बैठ जाना नहीं है। हाँ, शस्त्र-मार्ग से शान्ति-मार्ग जरूर ऊँचा है और शस्त्र-मार्ग का अवलंबन हमे तभी करना चाहिए, जब उसके लिए मजबूर हो जायँ। डर और कायरता से बढ़ कर मनुष्य का शत्रु कोई नहीं।

हिन्दुत्व और स्वराज्य—

अब रहा यह प्रश्न कि हम हिन्दुत्व खोकर, कमजोर बनकर स्वराज्य नहीं चाहते। बेशक, कोई हिन्दू ऐसा न चाहेगा। मगर स्वराज्य और हिन्दुत्व परस्पर विरोधी हई नहीं। हिन्दुत्त्व का अर्थ है हिन्दू-संस्कृति या हिन्दुओ के गुण विशेष। हिन्दू-संस्कृति सात्विक है। मनुष्योचित सब सद्गुणो का समावेश उसमे होता है। यथा तेज, धृति, क्षमा, दया, विनय, परोपकार, संयम, आदि। हिन्दू अपनी रक्षा करते हुए अपनी अच्छाई को बढ़ाते हुए जीना चाहते हैं; दूसरो को सता कर, दूसरो को बिगाड़ कर नहीं; यही उसकी सात्विकता और इसलिए उच्चता है। क्या स्वराज्य हमारी इस सात्विकता और उच्चता का विरोधी है ?

रही कमज़ोर बनने या दबने की बात। भला, कमज़ोर बनना, दबना और स्वराज्य ये बातें एक साथ कैसे रह सकती हैं ? आप से यह नहीं कहा जाता है कि दबो या कमज़ोर बनो। बल्कि यह कहा जाता है कि अपने बड़प्पन को, उच्चता को, सात्विकता को

न छोड़ो। सात्विकता कमजोरी नहीं, बड़प्पन दब्बूपन नहीं। हाँ, जहालत और जड़ता ज़रूर कमजोरी है। परशुराम के मुकाबले में राम ने क्या कमज़ोरी का परिचय दिया और लक्ष्मण ने राम से ज्यादह सफलता प्राप्त की? क्षमा, कमजोरों का नहीं, वीरों का भूषण है।

पर यदि अधिकांश हिन्दू अपने अन्दर इतनी सात्विकता, इतनी उच्चता अनुभव न करते हो तो? वे अपने को कमज़ोर और कमज़ोर बनते हुए समझते हों तो? तो मेरी राय में एक तो यह उनका भ्रम है। वे सिंह हैं, शूर-वीर हैं, बलवान हैं; इनके सब गुण उनके अन्दर हैं—सिर्फ कसर इसी बात की है कि वे अपने को भूल गये हैं जैसा कि वह सिंह का बच्चा अपने को भेड़ ही समझ बैठा था। हमें सिर्फ अपने बल का भान हो जाने की जरूरत है। बल का भान होगा बल की याद दिलाने से—पर हमें तो आज कमज़ोरी की याद दिलाई जा रही है। हमारी यह सदोष मनोवृत्ति भी हमें अपने को 'कमजोर' मान लेने में कम-कारणी-भूत नहीं है? बताइए, हिन्दू मुसलमानों से किस बात में कम हैं? धन में, जन में, बाहुबल में बुद्धि में, सदाचार में? सिर्फ एक बात में कम हैं, जहालत में, हुल्लड़पन में? क्या यह मुसलमानों की ताकत और हिन्दुओं की कमजोरी है? फिर यदि यह कहा जाय कि स्वराज्य के लिए तुम दोनों आपस में मेल कर लो और हिन्दुओं से कहा जाय कि तुम मुसलमानों की तरह नादान न बनो, जाहिल न बनो, तो क्या यह कमजोरी की सलाह है?

दंगों से मुसल्मानों का नुकसान—

मै मानता हूँ कि इसमे मुसल्मानो का भाग आक्रामक और हिन्दुओं का रक्षात्मक है । परन्तु मुसल्मानों के पास उनका कारण—उनका वह भय है जिसका जिक्र मै ऊपर कर चुका हूँ। और उस पर हम हिन्दुओ को सहानुभूति और भ्रातृभाव के साथ विचार करना चाहिए । हॉ, यह बात ठीक है कि मुसल्मानों को भी हिन्दुओं से वह भय न रखना चाहिए । यह भय उनके दिल की कमजोरी है, जिससे उन्ही का नुकसान है । इस भय के वशीभूत होकर उन्होंने अपनी संख्या बढ़ाने के जोश में अथवा हिन्दुओ को भयभीत करने के लिए, जो मार-काट आदि अत्याचारो का अवलंबन किया, उससे अब तक मुसल्मानों की ही हानि हुई है—हिन्दुओ की नही । हिन्दू तो उल्टे ज्यादह सजग और मज़बूत हो गए हैं और स्वामी श्रद्धानन्द जी का खून उन्हें और प्रबल बना देगा । हिन्दू, मुसल्मानो से, न धन-बल में कम हैं, न बुद्धि-बल में, न संख्या-बल में, न बाहु-बल मे । उनकी ख़ामोशी, उदारता, बड़प्पन और सहिष्णुता को उनकी बुज़दिली और दब्बूपन समझने की ग़लती करके मुसल्मानों ने जो ज्यादतियॉ उन पर की, उनसे मुसल्मानों की ही अब तक हानि ज्यादह हुई है। उनकी जाति और संस्कृति के प्रति हिन्दुओ की सहानुभूति कम ही हुई है और यह कम नुकसान नही है। धन-जन की हानि इसके मुकाबले में कुछ नही है । मनुष्य धन-जन को स्वाहा करके भी अपने धर्म, संस्कृति और समाज की सुकीर्ति की रक्षा करता है । वही मुसल्मान हिन्दुओं की दृष्टि मे खो रहे हैं। और सब वलो

में उनसे बढ़े-चढ़े हिन्दू यदि उनकी तरह मुसलमानों को दबाने पर तुल गये; तो न मुसलमानों के खंजर-तमंचे, न अफग़ानिस्तान या तुर्किस्तान के मुसलमान उनकी मदद कर सकेंगे।

संगठन-तनज़ीम पर विचार—

यहाँ तक हमने इन बातों पर विचार किया कि तबलीग़ और शुद्धि का मूल और वर्तमान रूप तथा असलियत क्या है। अब हम संगठन के प्रश्न पर विचार करें। संगठन का अर्थ है—बिखरे हुए समाज को एकत्र करना। एकत्रता या एकता एक प्रकार का बल है, जिसका उपयोग समाज को सुधारने, आगे बढ़ाने, उसकी रक्षा करने आदि में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। शुद्धि का मसला जैसे धार्मिक रूप में हमारे सामने आता है, वैसे संगठन का, तनज़ीम का नहीं। संगठन शुद्ध सामाजिक विषय है और उसी रूप में वह हमारे सामने उपस्थित भी किया गया है। तबलीग़-शुद्धि की तो कल्पना ही भयंकर है; तनज़ीम-संगठन का वर्तमान रूप और उपयोग मात्र मुझे कुछ सदोष दिखाई देता है। संगठन मूलतः अच्छी चीज़ होते हुए भी मुसलमानों ने इसका इस्तेमाल तबलीग़ को पुष्ट करने के लिए किया; और हिन्दुओं ने भी, उसके जवाब में ऐसा ही किया। इसी का फल है—तबलीग़ और शुद्धि के संगठित आन्दोलन, और संगठित लड़ाइयाँ। अपने अपने समाज की बुराइयों को सुधारने, नीति और धर्म के रास्ते अपनी अपनी जातियों को आगे बढ़ाने, का उद्योग करने के

बजाय संगठन और तबलीग़ एक दूसरे का मुकाबला करने लगे। अपने क्षेत्र से बाहर जा कर वे राजनैतिक बातो मे भी दख़ल देने लगे और ऐसा मालूम होता है, मानों वे भी राजनैतिक दॉव-पेंच के शिकार बना दिये गये हैं। मै ऊपर बता ही चुका हूँ कि हिन्दुओ और मुसलमानो का—नही सारे भारत-वासियो का राजनैतिक भाग्य और भविष्य एक ही है—वह अलहदा नहीं हो सकता; फिर सामाजिक संगठनो का राजनैतिक उपयोग क्यो होना चाहिए ? क्यों मुस्लिम-लीग और हिन्दू-महासभा पृथक् और जातीय प्रतिनिधित्व के या चुनाव के झगड़ो मे दिलचस्पी ले ? क्यो हिन्दू महासभा विधवाओ, अनाथो, अछूतो के मामलो मे केवल प्रस्ताव पास करके या बे मन से थोड़ा बहुत काम कर के ख़ामोश बैठी रहे—उनके लिए धन-जन की सहायता से वह इनकार करे और हिन्दू-मुसलमानो के दगों, शुद्धि संबंधी झगड़ो के मुक़दमो मे उसकी थैलियॉ खुलें, उसके कार्यकर्ता और सहायक पहुँचें ? क्यों हिन्दुओ का, हिन्दू-महासभा वादियो का रुपया चुनाव के झगड़ो मे पानी की तरह बहे और सामाजिक सुधार या धर्म-संशोधन और धर्म-प्रचार मे उनका वह जोश नही देखा जाता ? मतलब यह कि यदि दो दोषों से संगठन और तनज़ीम बचाये जॉय तो फिर वे उतने आपत्ति योग्य न रह जॉयगे—एक तो यह कि राजनैतिक बातो में वे दख़ल न दे और दूसरे, किसी जाति-विशेष से मुकाबला करने के हेतु से वे न किए जायॅ। समाज-सुधार और धर्म-प्रचार ही उनका एक मात्र हेतु हो, इसी भाव से वे किये जायँ। सब जातियों के

संगठन राष्ट्रीय महासभा, के अपने से संबंध रखने वाले कामों में तथा आवश्यकतानुसार एक दूसरे को भी सहायता पहुँचावें।

बुद्धि कहती है—बुरा हुआ, श्रद्धा कहती है—अच्छा होगा—

तबलीग़-तनज़ीम, शुद्धि-संगठन, महात्माजी के जेल जाने के बाद की पैदायश है। मुस्लिम-लीग और हिन्दू-महासभा को भी उनके बाद ही नये सिरे से जीवन मिला है। इसका क्या कारण है? इन जातीय आन्दोलनों या संस्थाओं के नेता, महात्माजी के असहयोग-कार्य-क्रम, उनकी अहिंसा-नीति, आदि से सर्वांश में सहमत न थे; और जब महात्माजी ने उनके विरोध करने पर भी अपना रास्ता न छोड़ा, तब उनका असन्तुष्ट होना स्वाभाविक था। ख़िलाफ़त में महात्माजी का हिन्दुओं से सहयोग दिलाना, कितने ही हिन्दू-नेताओं को अच्छा न लगा। उन्हें डर था कि इससे मुसल्मानों का ज़ोर बहुत बढ़ जायगा और वे हिन्दुओं को कुचल डालेंगे। दुर्भाग्य से महात्माजी के कुछ तो सामने ही, कुछ जेल जाने के बाद, कुछ मुसल्मानों की तरफ़ से ऐसी ज़्या-दतियां हो भी गईं जिनसे हिन्दुओं का संशय और बढ़ गया। इधर महात्माजी उनको कब्जे में रखने के लिए बाहर थे नहीं। दोनों जातियों के प्रायः सब राष्ट्रीय नेता, जिनका उस समय अपनी अपनी जातियों पर काफ़ी प्रभाव था, जेलों में बंद थे। ऐसी हालत में जो जातिगत-भाव और स्वार्थ रखने वाले छोटे-बड़े नेता और कार्य-कर्त्ता थे, उन्हें अपने ही विचारों, संस्कारों तथा धारणाओं के अनुसार उसका उपाय सूझ सकता था। मेरी

बुद्धि जहाँ तक सोचती है, यह हुआ तो बुरा, पर यही हो सकत
था। ईश्वर को यही मंजूर था। मालूम होता है, ईश्वर को
अधिक स्थायी एकता मंजूर है। स्वराज्य के पहले यदि दिलों में
गुब्बार भरा रह कर एकता सध जाती तो शायद स्वराज्य के बाद
उसका और बुरा फल भोगना पड़ता। अपने को कमजोर और
एक दूसरे का भय रखने वाली जातियों का यह संघर्ष, ईश्वर की ऐसी
योजना मालूम होती है कि दोनो का दिल साफ़ करके सम्मान-
पूर्वक दोनो को एक-दूसरे के गले मिलावे। यह हुई श्रद्धा की बात।
बुद्धि तो अब भी यही कहती है, दिल तो अब भी यही बोलता
है कि लोकमान्य और महात्माजी का रास्ता छोड़ कर हिन्दू-
मुसलमान दोनों ने ग़लती की; और एक ने ग़लती की इसलिए
दूसरे का वैसी ही ग़लती करना ठीक नहीं माना जा सकता। श्रद्धा
बुद्धि से बड़ी होती है। बुद्धि की गति मर्यादित है; श्रद्धा सर्व-
व्यापिनी होती है। बुद्धि मानवी चीज़ है, श्रद्धा दैवी। मुझे इसमें
कोई शक नहीं कि आज बुद्धि के सच होते हुए भी वह हारेगी
और श्रद्धा की विजय होगी। मैं उस विजय के दिन के लिए
लालायित हूँ। मेरे हाथ भक्ति-पूर्वक विजय-माला लिए श्रद्धा के
गले में डालने को उठे हुए हैं। वह दिन शीघ्र आवे, जब ये आँखें
राष्ट्रीय एकता को सत्य वस्तु देखें और स्वराज्य की प्रत्यक्ष स्थिति।

५—फूट का मूल और एकता का स्वरूप

हृदय-भेद की मीमांसा—

हिन्दू और मुसलमानों का यह वैमनस्य या विरोध आजकल की नई चीज नहीं—इसकी जड़ बड़ी गहरी है—ठेठ वहाँ तक पहुँचती है जहाँ से हिन्दू-मुसलमानों का इतिहास ही शुरू होता है। मौजूदा फूट चाहे हमारे भावी स्वराज्य की कल्पना के कारण पड़ी हो—पर इस फूट के अन्दर भी जो दोनों जातियों के दिल में एक दूसरे का भय, सन्देह और अविश्वास जम सा गया है, उसका कारण और ही है, और वह गहरा है। मुसलमान हिन्दुस्तान में आक्रमणकारी और धर्म-प्रचारक बन कर आये। एक ओर उन्होंने अपना राज यहाँ जमाया और दूसरी ओर बल और हिंसापूर्वक हजारों हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। आक्रमण-कारी और धर्म-प्रचारक दोनों हैसियतों से उन्होंने हिन्दुस्तान में हाहाकार मचा दिया था। हिन्दुओं को ऐसे भीषण और क्रूर प्रचार का अनुभव शायद पहले न हुआ हो। हिन्दुओं ने अपने शक्ति भर दोनों बातों में उनका विरोध और प्रतिकार तो किया; पर इस्लाम या मुस्लिम-संस्कृति की छाप उनके दिल पर अच्छी न पड़ी। धर्म के मामलों में उनके तलवार का न्याय और नीति-सदाचार के संबंध में उनकी हीन कल्पनायें तथा ऐसे ही व्यवहार ने उन्हें, एक मनुष्य-समाज की हैसियत से, हिन्दुओं की दृष्टि में

गिरा दिया। एक और राजनैतिक दृष्टि से और दूसरी ओर धार्मिक दृष्टि से वे उन्हे अपने धर्म, जाति और देश का शत्रु मानने लगे। उनकी अमर्याद हिंसा-प्रवृति और हीन नीति-भावो तथा गो-वध और गोभक्षण ने हिन्दुओ के दिल में घृणा; उनके राजनैतिक छल-कपट ने अविश्वास और बढ़ते हुए राज्य-प्रभुत्व ने आतंक पैदा कर दिया। मुसलमान बड़े आक्रामक धर्मप्रचारक थे। वे काफ़िर की सूरत देखना बरदाश्त नही कर सकते थे, इस्लाम मे आये बिना वे किसी की गति-मुक्ति ही न मानते थे। इस्लाम-बाहर व्यक्ति को ईश्वर-विमुख समझ कर उसका वध करना, वे ईश्वर-सेवा समझते थे। सारे मुसलमान उनकी नजर मे भाई थे। वे एक थाली में खाना खाते, एक लोटे से पानी पीते। हिन्दू, धर्म के लिए किसी की हत्या करना आवश्यक नहीं मानते थे। उनके यहाँ अनेक मत-मतान्तर थे। एक दूसरे के खान-पान से बड़ा विचार रक्खा जाता था। बात-बात मे तलवार खींच लेना उनकी आदत मे दाखिल न था। इस विरोध को देख कर मुसलमानो ने हिन्दुओ को तलवार में अपने से कमजोर या समाज-व्यवहार मे अपने से गिरा हुआ माना हो, और इस कारण वे भी उन्हे गिरी नजर से देखते हों तो ताज्जुब नहीं। राजनीति में विजय और धर्म मे विस्तार करने को तो वे यहाँ आये ही थे। मेरी राय मे इस राजनैतिक शत्रुता और सांस्कृतिक अथवा धार्मिक भिन्नता या विरोध के कारण शुरू से ही दोनो जातियो के दिलो में गाँठ पड़ गई। राजनैतिक अविश्वास और सामाजिक घृणा ने दोनों को एक दूसरे के निकट न आने दिया। यही दोनो के वैमनस्य का मूल

है। हिन्दुओं के दिलों से मुसलमानों के अत्याचारों की स्मृति नहीं जाती। हिन्दुस्तान से राज्य चले जाने पर, अब भी, मुसलमान अपने को हाकिमों की जाति, विजेताओं की जाति मानते हैं और हिन्दुओं को विजित जाति मान कर नफ़रत की निगाह से देखते हैं। जैसे जैसे मुसलमान यहाँ जसते और बसते गये और दिन बीतते गये, तैसे तैसे राजनैतिक शत्रुता कहीं कहीं पड़ोसी राज्यों की मित्रता और कहीं उदासीनता का रूप धारण करने लगी और कहीं पूर्ववत् बनी रही। सांस्कृतिक घृणा भी ऊँचे दरजे के लोगों में ही ज्यादह रह गई—जनता को स्मृति तो रही, सामाजिक व्यवहार में भेद-भाव तो रहा—पर दुश्मनी या नफ़रत का भाव प्रायः निकल सा गया। अंगरेजी राज के बाद, उनकी फूट डाल कर राज करने की नीति तथा नेताओं की राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं के कारण, शत्रुता और घृणा की बुझती हुई चिनगारियों ने फिर अविश्वास, संशय और भय का रूप धारण कर लिया जिसका अन्त हुआ वर्तमान फूट और कटुता में।

सांस्कृतिक भेदाभेद—

इस तरह विचार करने पर मालूम होता है कि हमारी फूट का कारण केवल राजनैतिक ही नहीं, सांस्कृतिक भी है। यदि केवल राजनैतिक होता तो पिछले जमाने में तथा अब भी एकता कभी की हो गई होती; तथा काम चलाऊ एकता होती रहती और दोनों अपने सामान्य राजनैतिक जीवन में एक रास्ते चलते हुए नज़र आते।

यहाँ हमें यह विचार करना होगा कि दोनों मे धार्मिक या सांस्कृतिक साम्य—वैषम्य—क्या है तथा दोनों की एकता का अर्थ और स्वरूप क्या है।

धर्म और धर्म-पन्थ क्या हैं, यह हम पहले देख चुके हैं। जिसको इस्लाम और हिन्दू-धर्म कहते है वे भिन्न भिन्न पन्थ हैं। यह बात दूसरी है कि दोनो के उच्च और मूल सिद्धान्त प्रायः समान हों; पर ऐसे समान तत्वो का नाम इस्लाम और हिन्दू-धर्म नही, बलिक उनके अलावा कुछ और बाते भी दोनो मे ऐसी हैं जो दोनो को एक-दूसरे से जुदा करती है। वे या तो नियम-विशेष हो सकते हैं, या तत्व-विशेष। पर कम-ज्यादह ज़ोर हो सकता है या उनके अमल के तरीके हो सकते हैं। हिन्दू-धर्म और इस्लाम दोनों मानते है कि ईश्वर है—फिर कोई उसे अल्लाह या खुदा कहता हो और कोई परमेश्वर, आत्मा, पुरुष, ब्रह्म, कर्म, या शक्ति कहता हो—दोनो मानते है कि ईश्वर-विमुख का कल्याण नही, दोनों मानते हैं कि पवित्रता ईश्वर के नजदीक जाने का साधन है; दोनों मानते हैं कि सद्गुणो को बढ़ाना और दुर्गुणों का कम करना या नीति और सदाचारमय जीवन बिताना पवित्र बनने का तरीका है; दोनो मानते है कि सच्चाई, ईमानदारी, दूसरे की भलाई, भलमन्सी आदि गुण इन्सानियत के लिए जरूरी हैं, दोनो मानते है कि चोरी करना गुनाह है, दूसरे की बहू-बेटियो को बुरी नज़र से देखना पाप है, झूठ बोलना, दगा करना बुरा है; कृतज्ञता पुण्य है, कृतघ्नता पाप है, यह भी दोनों मानते हैं; प्रिय भाषण अच्छी चीज है; गाली देना बुरी बात है यह भी

दोनों को मंजूर है। अब बताइए कि धर्म और नीति की ऐसी कौनसी बात रह गई जिसमें दोनो का विरोध पड़ता है; और सो भी इतना कि दोनों एक हजार वर्ष से एक दूसरे से इतना जुदे और दूर रहते आये हैं? वह भेद धर्म के मूलतत्वों में उच्च स्वरूप मे या साधारण नीति-नियमों में नहीं है, बल्कि धर्म-शास्त्र में समाज-व्यवहार में या संस्कृति मे है। हिन्दू और मुसलमानों में लड़ाइयाँ इस बात पर नहीं होती कि तुम ईश्वर को अल्लाह क्यों कहते हो या तुम पुनर्जन्म को क्यो नहीं मानते हो, या तुम्हारे यहाँ क़यामत के दिन ही सब का फैसला एक साथ कैसे होगा, या तुम श्राद्ध और तर्पण क्यो नही करते, या तुम भी पाँच दफ़ा सन्ध्या क्यो नही करते या दाढ़ी कटा कर चोटी क्यों नहीं रखा लेते? ये तो दो घड़ी मनोरंजन के, वाद-विवाद या शास्त्रार्थ के विषय भले ही हो जायें, पर इनके लिए मारकाट और लूट-मार नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि दोनों की संस्कृतियों में, व्यवहार-शास्त्र मे, जातीय स्वभाव में कुछ अन्तर है। वह क्या है?

संस्कृति क्या चीज़ है?

पहले हम यह जान ले कि संस्कृति या जातीय स्वभाव क्या वस्तु है। इससे पहले हमने देखा है कि धर्म-पंथ मनुष्य के लक्ष्य तक पहुँचने की सड़कें हैं। अपना गोल बना कर इस सड़क पर चलते हुए मनुष्य-समाज जिन संस्कारों को पाता है—जिन विचारों, भावों, गुण, दोषों या कार्यों का असर उसके जीवन पर होना

है और उससे जो उसका एक ख़ास स्वभाव या ख़ासियत बन
जाती है उसीका नाम है संस्कृति या जाति-स्वभाव । दूसरे शब्दो
मे यो कहे कि किसी समाज या जाति की भली बुरी आदतो या
ख़ासियतो के योग या समुच्चय का नाम है संस्कृति । संस्कृति
जाति या समाज—विशेष के धार्मिक और सामाजिक आदर्श,
नेताओं के उपदेश और गुण-धर्म, तथा सामाजिक और राजनै-
तिक परिस्थिति के अनुसार बनती है, और बदलती रहती है ।
जो संस्कृति समाज को जितना ही अधिक, जितना ही जल्दी,
उन्नति की तरफ़ ले जाती है, अच्छाई की ओर खीचती है उतनी
ही वह अच्छी मानी जाती है । उसकी सब से अच्छी कसौटी
यह है कि जो संस्कृति मनुष्य के उच्च गुणो को बढ़ाती है, पाप
से हटा कर पुण्य की ओर ले जाती है, वह श्रेष्ठ संस्कृति है ।
दूसरी भाषा मे यो कहे कि जो संस्कृति नीति और सदाचार के
उच्च नियमो का पालन कराती है, जो मनुष्य को तेजस्वी, नम्र
दयावान्, सत्य, भक्त, सच्चरित्र, परोपकार शील, उदार, क्षमाशील
और शूरवीर बनाती है, वह श्रेष्ठ संस्कृति है। और दूसरी तरह से
कहें तो जो संस्कृति मनुष्य को हिसा की ओर से हटा कर अहिसा
की ओर, असत्य से हटाकर सत्य की ओर, स्वच्छंदता से हटाकर
संयम की ओर और भय से हटा कर निर्भयता की ओर और
कायरता से हटाकर शूरवीरता की ओर लेजाती है, वह श्रेष्ठ है ।

स्वभाव-भिन्नता—

आइए, अब हम हिन्दुओं और मुसलमानो की संस्कृतियो
का या जातीय स्वभावो की समता और विषमता का विचार करे ।

एक औसत दर्जे के हिन्दू और मुसल्मान का नमूना अपने सामने रखिए। मुसल्मान आपको तेज़ तर्रार, जबां दराज़, मरने-मारने को तैयार, जाहिल, जनूनी, बेख़ौफ, अपनी क़ौम और मजहब का फ़ख्र रखने वाला, जोशीला, भलाई-बुराई का गहरा विचार न करने वाला, स्त्री-पुरुष संबंधी नीति-नियमों की कम परवा करने वाला, कम रहम रखने वाला, एहसान मानने वाला, फ़र्मांबर्दार, वफ़ादार और दिलेर मालूम होगा। एक हिन्दू आपको पाप भीरु, शान्त, ढीला, महत्वाकांक्षा-हीन, दयावान्, नम्र, परोपकारशील, सहिष्णु, क्षमाशील और सज्जन दिखाई देगा। आप देखेंगे कि दोनों में कुछ अच्छे गुण, अनुपयोग या दुरुपयोग से, दुर्गुणवत् हो गये है और कुछ दुर्गुण गुण के रूप में स्वीकृत हो गये हैं। और यही दोनों की संस्कृति या स्वभाव का अन्तर है। मुसल्मान को यह सिखाया जाता है कि "हमारा ही मजहब दुनियाँ में सब से अच्छा है, यही एक ईश्वर तक पहुँचने का सब से बेहतर रास्ता है, जो खुदा को नहीं मानता वह काफ़िर है, खुदा का रास्ता वही हैं जो हजरत मुहम्मद ने बताया है, इसलिए जो इस्लाम के अंदर नहीं आया है वह काफ़िर है, काफ़िर खुदा का मुन्किर—ईश्वर विमुख—होता है, इसलिए मार डालने के लायक है—जो एक भी काफिर को दीने इस्लाम में लाता है वह खुदा की मेहर हासिल करता है—जिस तरह हो सके इस्लाम को बढ़ाओ।" इसी उपदेश में मुस्लिम-संस्कृति और मुसल्मानों के स्वभाव में पाई जाने वाली असत्याद हिंसा-वृत्ति, असहिष्णुता और जहालत का बीज है। इसके विपरीत हिन्दू को

यह उपदेश मिलता है—"दूसरा बुरा करता हो तो करने दो, वह आप नतीजा पावेगा। तुम अच्छे बने रहो। राह चलते झगड़ा मोल न लो। सब मे एक ही आत्मा है। सब को अपने समान समझो। ईश्वर सब का एक है। सब धर्म उसीके पास जाते है। अपने धर्म को छोड़कर दूसरे के धर्म में पड़ना बुरा है" आदि। इसमें है उनकी सज्जनता का मूल। मुसलमान क्यो उग्र है और हिन्दू क्यों शान्त हैं, एक क्यो आक्रामक है और दूसरा क्यों रक्षा-शील है, यह भी इससे भली भाँति जाना जा सकता है। मुसलमानो का यह उग्र हिंसक स्वभाव चाहे तत्कालीन अरब की परिस्थिति के कारण बना हो, चाहे पैग़म्बर साहब के कुछ उपदेशो का दुरुपयोग करने के कारण बना हो—अब के सभ्य समाज मे वह है आक्षेप-योग्य और अक्षम्य। इधर हिन्दुओं का ढीलापन चाहे भारत की सुखेच्छा वर्द्धक परिस्थिति का परिणाम हो, चाहे धर्म के यथार्थ स्वरूप को न समझने का फल हो, वह है निन्दनीय और उसके दूर होने की परम आवश्यकता है।

संक्षेप में कहे तो एक की अति-उग्रता और दूसरे का अति-ढीलापन दोनो के स्वभाव का स्पष्ट अन्तर है और मुस्लिम संस्कृति की हिंसा वृत्ति तथा हिन्दू स्वभाव की अकर्मण्यता दोनो मे भारी सुधार की आवश्यकता है। यदि मुसलमान कुछ शान्त और हिन्दू ज़रा तेज़ तर्रार हो जाये—यदि मुसलमानो मे कुछ सात्विकता आ जाय और हिन्दुओं का कुछ रजोगुण बढ़ जाय तो दोनो एक दूसरे के नजदीक जल्दी आ जायंगे। मुसलमानो की हिंसा और

हिन्दुओं की जड़ता दोनों तमोगुण के नमूने हैं, यदि इस्लाम की हिंसकता शुद्ध वीरता के—क्षात्रतेज के—कमजोरों और सताये गयों की रक्षा करने में अपने बल-वीर्य का उपयोग करने की भावना के रूप में परिणत हो जाय; यदि हिन्दुओं की जड़ता को कर्मण्यता का रूप प्राप्त हो जाय तो दोनों का पारस्परिक भय, अविश्वास, संशय, वैमनस्य सब मिट जाय।

मुस्लिम संस्कृति पर महात्माजी का प्रभाव—

यदि हम महात्माजी के बनाये स्वराज्य-कार्य क्रम पर, उसमें दिये गये हिन्दू-मुस्लिम एकता की शर्त पर, खिलाफ़त में दिये उनके तथा दिलाये हिन्दुओं के सहयोग पर और उसके सिल्सिले में मुसलमानों पर लगाई शान्ति और संयम की शर्त पर बारीक नजर से गौर करेंगे तो हमें तुरंत मालूम हो जायगा कि किस तरह वे मुस्लिम-संस्कृति में इस आवश्यक सुधार का संस्कार धीरे धीरे कर रहे थे, किस तरह हिन्दुओं के पुरुषार्थ, कर्मण्यता और शूरवीरता के भावों को उत्साहित करके उनकी जडता को कम कर रहे थे। उस समय के, खास कर मुस्लिम नेताओं और कार्यकर्ताओं तथा आमतौर पर सारी मुस्लिम जनता में शान्ति, सहिष्णुता और संयम का प्रवाह, धीरे धीरे बढ़ रहा था। यदि अली-भाई आदि कुछ मुस्लिम नेता जो आज न इधर के रहे हैं न उधर के, महात्माजी के संपर्क और प्रभाव में न आते तो इस कलह के युग में वे हिन्दुओं के सबसे बड़े और तीव्र मुखालिफ होते जिस प्रकार वे मुस्लिम नेताओं, कार्यकर्ताओं और जनता के उच्च गुणों

सद्भावो और सुवृत्तियों को स्पर्श, जाग्रत और उत्तेजित करके खूबी से मुस्लिम-संस्कृति की अच्छाई को बढ़ा और बुराई को कम रह रहे थे, यदि वही क्रम उनके जेल जाने के बाद भी क़ायम रह पाता, यदि छोटी या बड़ी भूलों के लिए मुस्लिम नेताओं या कार्य-कर्ताओं की निन्दा या बदनामी न की जाती, यदि उनकी पोल खोल देनेकी बालक-योग्य और असज्जनोचित चुलबुलाहट को हम दबा पाते, यदि सच बात कहने, हकीकत को ज्यो का त्यो जाहिर कर देने, वैज्ञानिक तराजू पर दोनो की भलाई-बुराई तौलने और इन्साफ चाहने की तत्वतः समर्थनीय परन्तु व्यवहारतः अदूर-दर्शिता और अव्यावहारिकता-पूर्ण मनोवृति पर हम कब्जा कर पाते, तो मुस्लिम संस्कृति के सुधार का रास्ता अब तक खुल गया होता। ग़लतियाँ होने पर भी यदि हम उनका अर्थ उदारता-पूर्वक करते, उनके बुरे भाग पर कम और सहानुभूति-पूर्वक तथा अच्छे भाग पर ज्यादह और उत्साह-पूर्वक प्रकाश डालते, यदि लोगों से कहते—"भाई, ग़लती बड़ो बड़ो से हो जाया करती है" और इस तरह नेताओ और कार्यकर्ताओ को उसके परिणाम और जिमे-वारी से बचा लेते और संस्कृति-सुधार के लिए उनका हौसला बढ़ाते तो यह काम जल्दी और ज्यादह आसान हो जाता। उनकी भूलो के समय हमारा व्यवहार बुजुर्गी, दानाई और हम-दर्दी का न होने के कारण मुस्लिम सुधारेच्छु नेता और कार्य-कर्ता, काफी बल और उत्साह के अभाव मे, एक एक करके फिर उसी पुराने गड्ढे मे जा गिरे—जो एक दो बच रहे, वे आज अपने को सब तरह असमर्थ और प्रभावहीन पाते है।

हिन्दू क्या सहायता दें ?

यह सच है कि अपनी संस्कृति का सुधार पहला काम है। मुसलमानों का और इसमे उन्हीं का लाभ सब से ज्यादह है। पर यदि वे इसकी ज़रूरत न महसूस कर पाये हों, या सुधार का काफी बल और हिम्मत अपने में न अनुभव करते हों तो क्या एक दूसरी संस्कृति वाले भाई का यह कर्तव्य नहीं है कि उनका रास्ता साफ-सुथरा और विशद कर दे ? यदि यह परोपकार-भाव हमारी समझ मे ठीक ठीक न आता हो तो क्या इस खयाल से भी कि कम से कम हम तो उसके बुरे प्रभाव और फल से बचेंगे, हमें यह न करना चाहिए ? मैं तो एक सच्चे हिन्दू का परमार्थ-दृष्टि से यह कर्तव्य और स्वार्थ-दृष्टि से महान् आवश्यकता समझता हूँ कि वह मुस्लिम सुधार का रास्ता सुगम कर दे—उसके सुधारेच्छुओं का हौसला अपनी सहानुभूति, सद्-व्यवहार, सौजन्य, प्रोत्साहन, सहायता आदि के द्वारा बढ़ा कर।

पहले कुरान—सुधार या सुधारक का जन्म ?

किन्तु इस पर यह कहा जाता है कि मुसलमानों की हिंसा-वृत्ति तब तक कम न हो सकेगी, सुधर न सकेगी जब तक कुरान की वे आयतें न निकाल डाली जायँ, या उनका अर्थ न बदल दिया जाय, जिनके द्वारा वह पोसी और पाली गई हैं। तो इस पर यह सवाल उठता है कि पहले कुरान में संशोधन हो या पहले संशोधन की जरूरत समझने और करने वाला मुस्लिम सुधा-रक पैदा हो ? पहले वेदों के अर्थों में सुधार हुआ, या पहले

ऋषि दयानन्द पैदा हुए? कुरान में सुधार या तो मुसल्मान कर सकता है या, वह जो हिन्दू, मुसल्मान, ईसाई इन नामों और दायरो से ऊपर उठ गया हो, दूसरा नहीं, दूसरे तो सुधार की ज़रूरत सुझा सकते हैं, सुधार की प्रेरणा कर सकते हैं, सुधारक पैदा होने योग्य स्थिति बना सकते है, सुधारेच्छु का हौसला बढ़ा कर उसको आगे बढ़ा सकते हैं। आइए, हम हिन्दू इस काम में मुसल्मानो का साथ दें, उनकी सहायता करें। यह काम हम उन्हें गालियाँ देकर, कोस कर, नीचा दिखाकर, परेशान करके, डराकर या दबा कर नही कर सकते। यह तो हम उन्हें समझा कर, रिझा-कर, प्रेम दिखा कर; हमदर्दी का हाथ आगे बढ़ाकर, धीरज, विश्वास और सहिष्णुता के साथ ही कर सकते हैं।

नेता और सुधारक—

यह काम न हिन्दू-नेता कर सकते हैं, न मुस्लिम नेता। यह तो हिन्दू-सुधारक और मुस्लिम-सुधारक ही कर सकते हैं। ख्वाजा-हसन निज़ामी, श्री जिनाह, सर अब्दुल रहीम नेता कहे जा सकते हैं, सुधारक नही; पू० मालवीय जी, लालाजी जितने नेता हैं, उतने सुधारक नही। सुधारक कबीर थे, नानक थे, दयानन्द थे, गाँधी जी हैं। नेता विचारक कम, कर्ता अधिक होता है; सुधारक विचा-रक और कर्ता दोनो होता है। नेता दल-विशेष की चीज़ होता है; सुधारक मनुष्य-मात्र की सम्पत्ति। नेता में उत्साह तो खूब होता है; पर दर्शन (vision) नही या कम; सुधारक द्रष्टा होता है। नेता बाहु है; सुधारक दिल, दिमाग़ और बाहु तीनो है। नेता संरक्षक

(Conservative) होता है; सुधारक सर्व-ग्राहक और सर्व-व्यापक; नेता संभालता रहता है; सुधारक देता जाता है और बढ़ाता जाता है। नेता अपनों को चाहता है, दूसरों को दुरदुराता है; सुधारक दूसरों को भी सुधार कर अपना बनाता है। नेता से प्रतिपक्षी डरता है; सुधारक को पूजता है। नेता का शस्त्र होता है भय; सुधारक का होता है प्रेम। नेता आज की बात सोचता है; सुधारक कल की दृष्टि में रखकर आज का कार्य-क्रम बनाता है। नेता क्षत्रिय है, सुधारक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब कुछ है। नेता प्रतिपक्षी को हराना चाहता है; सुधारक उसे जीताना चाहता है। नेता जीतने में गौरव समझता है, सुधारक हारने में; नेता जीत कर भी हारता है; और सुधारक हारकर भी जीतता है। नेता जाति-भक्तों, देश-भक्तों के हृदय में रहता है; सुधारक मनुष्य-मात्र के हृदय में घर बनाता है। नेता अच्छों का संग्रह करके ले चलता है; सुधारक बुरों, पतितों का उद्धार करता है। नेता धर्म-पालक होता है, सुधारक धर्म-संशोधक। नेता समाज रक्षक होता है; सुधारक समाजोद्धारक! नेता वीर होता है; सुधारक वीर और तपस्वी दोनों होता है। नेता में जोश होता है, आवेश होता है, सुधारक में गंभीरता और शान्ति भी होती है। नेता नदी है; सुधारक सागर। नेता कंचन है; सुधारक पारस। नेता शक्ति है; सुधारक धर्म। परमात्मा का अनुग्रह है कि भारत में नेता भी हैं; सुधारक भी है। उसे किस बात की कमी है? हिन्दुओ और मुसलमानो, अपने नेताओं को तो तुमने पहचान लिया है, अपने सुधारक को पहचानो!

संस्कृतियों का आदर्श और मेल—

यहाँ तक जो संस्कृति का विवेचन हुआ, वह तो हिन्दुओं और मुसलमानों की संस्कृति की वर्तमान अवस्था का हुआ, संस्कृति के आदर्शों का नही। हमने यह तो देख लिया कि दोनो संस्कृतियाँ आज किस दरजे तक पहुँची हुई है, अब यह देखना बाकी है कि वे दोनो को कहाँ पहुँचाना चाहती है। अर्थात् यह कि उन संस्कृतियो का कार्य (mission) क्या है ? किसी संस्कृति का कार्य हो सकता है—उस जाति या समूह के बलिष्ट और पवित्र तत्वो को बढ़ाते हुए पूर्णता तक पहुँचा देना। इस्लाम सस्कृति की विशेषता है—उसका भ्रातृ-भाव हिन्दू-संस्कृति की विशेपता है, उसका आत्म-भाव, ईसाई संस्कृति की विशेपता है, उसका दया-भाव। मुस्लिम सस्कृति चाहती है कि मुसलमान दुनिया मे भ्रातृ-भाव को फैला कर पूर्णता को पहुँचें; ईसाई सस्कृति चाहती है कि ईसाई दया-भाव का विकास करके पूर्णत्व प्राप्त करे; आर्य या हिन्दू संस्कृति कहती है कि आत्म-भाव को व्याप्त कर के परमतत्व को पाओ। गहरा विचार कर के देखेंगे तो हमे मालूम होगा कि भ्रातृ-भाव, दया-भाव और आत्म-भाव—तीनो एक ही पूर्ण तत्व के भिन्न भिन्न अंग या रूप है। भ्रातृ-भाव, दया-भाव और आत्म-भाव तीनो के अन्दर एक दूसरे का भाव समाया हुआ है और तीनों परस्परावलंबी है। आत्म-भाव की कल्पना कर लेने वाले भ्रातृ-भाव या दया-भाव की कल्पना करने वालो से, तत्व-चिन्तन में जरूर आगे बढ़ गये है; पर उसके कारण उन समाजो के इन भावो के विकास-क्रम की आरंभिक अवस्थाओ से संघर्ष तो दूर,

नाम के सिवा प्रायः कोई भेद नहीं रह जाता। भ्रातृ-भाव और दया-भाव दोनों की परिणति अन्त को आत्म-भाव में हुए बिना रह नहीं सकती। क्या बलिहारी हो यदि मुस्लिम, ईसाई और आर्य—तीनों जातियाँ अपने इन आदर्श को पहचान कर, एक दूसरे की पोषक होती हुई, सारे मानव-वंश की सेवा करें! यही परमेश्वर की सच्ची सेवा है; यही सच्ची आस्तिकता है; यही सच्चा मुसलमानी-पन, ईसाई-पन और हिन्दू-पन है। परमात्मा हमारी आँखें खोलें, हमें दर्शन दें, हमें बल दें।

दो प्रकार की एकता—

संस्कृति की इतनी चर्चा से हम यह जान गये कि न हमारे धर्म-तत्वों में कोई विरोध है, न संस्कृति के आदर्शों में; सिर्फ कहीं भेद या विरोध या कमी है तो हमारे मौजूदा स्वभावों में है। तो सवाल यह पैदा होता है कि यह स्वभाव-भेद कैसे मिटे? यह भी सवाल हो सकता है कि यदि यह स्वभाव-भेद मिटना निकट भविष्य में असंभव या दुःसाध्य हो तो दोनों में एकता हो ही नहीं सकती? इन पर विचार करते हुए, हमे एकता के दो रूपों का परिज्ञान होता है—(१) सांस्कृतिक अथवा स्वभावगत एकता और (२) राजनैतिक अर्थात् काम चलाऊ एकता! सच्ची और स्थायी एकता तो सांस्कृतिक एकता ही है और स्वभाव-विरोध मिट जाने पर ही हो सकती है; पर होगी धीरे धीरे। राजनैतिक एकता के लिए इतनी बातें आवश्यक हुआ करती हैं—(१) दोनों का एक राजनैतिक ध्येय (२) दोनों के समान राजनैतिक सुख-दुःख (३) उस ध्येय का ज्ञान और सुख-दुःखों की अनुभूति।

दोनों का राजनैतिक मक़सद दोनो के राष्ट्रीय नेताओं ने और राष्ट्रीय महासभा ने निश्चित कर दिया है—स्वराज्य। दोनो के समान सुख-दु.ख भी मौजूद हैं—मौजूदा शासन से दोनो को होने वाले अनेक प्रकार के दुःख—गुलामी और स्वराज्य मे मिलने वाले अनेक सुख—आजादी। तीसरी बात मे मुझे अभी ख़ामी नज़र आती है। मौजूदा शासन-प्रणाली से हमे दुःख तो है; पर अधिकांश हिन्दू-मुस्लिम उन्हे उस तीव्रता से नही अनुभव करने लगे हैं, जिससे वे बिना स्वराज्य के एक मिनिट भी जी सकें—उसकी भारी से भारी कीमत तत्क्षण दे दें। आजादी का प्रेम अभी इतना नहीं पैदा हुआ है कि उसके बिना हमारे जी को चैन न मिले। यदि ऐसा होता तो हम आपस मे लड़ते रहने के बजाय किसी न किसी तरह एकता स्थापित करके अपने सामान्य गनीम से भिड़े रहते। अस्तु।

अब हमे यह देखना चाहिए कि दोनो प्रकार की एकता हम किस तरह साध सकते है, उनमे क्या बाधायें है, वे कैसे दूर की जा सकती है और उसके लिए हम हिंदुओं का क्या कर्त्तव्य है—इनका सविस्तर विचार अगले प्रकरणो मे करेंगे।

६—एकता के साधन और कठिनाइयाँ

सांस्कृतिक एकता—

सांस्कृतिक और राजनैतिक दोनों प्रकार की एकता के साधनों पर हम पृथक् पृथक् विचार करें। सांस्कृतिक एकता के लिए इतनी बातें जरूरी हैं—

(१) हिन्दुओं और मुसलमानों को इस एकता की जरूरत महसूस कराना—इसके लिए लेख, पुस्तकें, व्याख्यान दिलवाना, चर्चा करवाना।

(२) दोनों जातियों के उदार और आजाद ख्याल के लोगों के संघ और जमैयत कायम करना,

(३) दोनों के सामाजिक सुख-दुःखों के अवसर पर एक दूसरे का सहयोग देना,

(४) पुराने इतिहासों की कड़वी स्मृतियों को भुलाना और नये युग के प्रेम और शान्ति के पैगाम को सुनना और मानना,

(५) दोनों जातियों की अच्छाइयाँ और खूबियाँ एक दूसरी पर फैलाई जायँ और बुराइयों पर तवज्जह न दिलाई जाय,

(६) हिन्दू मुसलमानों के धर्म-ग्रन्थों को, तथा अन्य साहित्य को, और मुसलमान हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों तथा साहित्य को पढ़ने, मनन करने के लिए उत्साहित किये जायँ,

(७) मुस्लिम नेता अपने समाज की हिंसावृत्ति को दमन

करने का नियम करले और हिन्दुओ को उनके अत्याचारों से अभय का आश्वासन दें,

(८) मुसलमान गो वध और गो-मांस-भक्षण छोड़ दे,

(९) हिन्दू मुसलमानो को हिकारत की नज़र से देखना, उन्हे 'म्लेच्छ' 'मुसण्डा' आदि हीन शब्दो से याद करना छोड़ दे,

(१०) मुसलमान हिन्दुओ को 'काफ़िर' कहना छोड़ दें ।

(११) हिन्दू मसजिद मे जाने के लिए, मुसलमान मन्दिरों में आने के लिए उत्साहित किये जायँ,

(१२) हिन्दू मुसलमानों के धार्मिक उत्सवों मे मुसलमान हिन्दुओं के धार्मिक त्यौहारों मे शरीक हुआ करें,

(१३) हिन्दू मुसलमानो के धार्मिक भावो को आघात पहुँचाने की और मुसलमान हिन्दुओ के धर्म की निन्दा करने की कोशिश छोड़ दे ।

(१४) दोनो जातियो मे किन किन बातो मे मिलाप और समानता है, इसी पर ज्यादह ध्यान दिया जाय, किन किन बातो मे विरोध है, इसकी तरफ उदासीनता रक्खी जाय ।

(१५) यदि मुसलमान हिंसावृत्ति कम कर दे, और गो-भक्षण छोड़ दें तो उनके साथ हिन्दुओं का रोटी-बेटी-व्यवहार जारी हो जाय, *

---

* हिन्दू शायद इस सूचना पर ज़्यादह चौकें, यदि हिन्दू अंगरेज़ों के साथ खाना खा सकते हैं, मेमों से शादियाँ कर सकते हैं, तो मुसलमानों से, गो-भक्षण बद करने के बाद, ऐसा व्यवहार करना क्यों कर अनुचित हो सकता है ? लेखक

(१६) दोनों एक दूसरे के समाज-सुधार की बातों में दिलचस्पी लें,

(१७) मुसलमानों के लिए हिन्दी और कुछ संस्कृत पढ़ना तथा हिन्दुओं के लिए उर्दू और कुछ अरबी पढ़ना कुछ हद्तक लाजिमी कर दिया जाय,

(१८) हिन्दुओं और मुसलमानों के अलग विद्यालय और विश्व-विद्यालय न रहें, एक ही विद्यालयों और विश्व-विद्यालयों में सिर्फ धार्मिक शिक्षा का अलहदा प्रबंध हो जाय,

(१९) मुसल्मान एक थाली में खाना, एक लोटे से पानी पीना बंद कर दें और बरतन आदि ज्यादह सफ़ाई से रक्खा करें।

(२०) हिन्दू मुसलमानों से छूआछूत और खान-पान संबंधी थोथी ऊपरी बातों को कम महत्व देने लगें,

(२१) हिन्दू संस्कृत-प्रचुर और मुसलमान अरबी-भरी बोली बोलना और लिखना छोड़ दें ।

यही रास्ता है—

हिन्दुओं और मुसलमानों के मौजूदा वैमनस्य और कटुता के जमाने में ऐसी बातें पेश करने वाला 'शेखचिल्ली' कहा जाय तो ताज्जुब नहीं। फिर भी मैं कहता हूँ कि यदि इन दोनों जातियों को सदा के लिए नजदीक आना है तो उसका यही उपाय है। यह सच है कि आज की परिस्थिति इन बातों की तरफ़ अधिकांश हिन्दू-मुसल्मानों का ध्यान न जाने देगी; पर फिर मैं कहता हूँ कि रास्ता यही है। जब तक एक जाति दूसरी जाति को, एक संस्कृति दूसरी संस्कृति को हड़प जाने की अभिलाषा रक्खेगी, तब तक

एकता कठिन है और जब तक एकता नही है, तब तक भारत की आज़ादी एक स्वप्न है। जब तक भारत स्वतंत्र नही है, तब तक न हिन्दू-समाज, न हिन्दू-धर्म सुरक्षित है; और न इस्लाम न मुस्लिम-जाति महफूज है। गुलाम हिन्दुओं और गुलाम मुसल्मानो का आपस मे जूता-पैजार करते रहना वैसा ही हास्यास्पद है जैसा कि दो कैदियो का अपने कमरे के ईंट-रोड़े या कम्बल तसलो के लिए लड़ना—इस बात को भूल कर कि हम कैदी हैं, हमें जेल से छूटना है, जेलर हमारी बेवकूफी पर हँस रहा है कि हम अपने आप अपनी बेड़ियाँ मज़बूत कर रहे हैं। कैसे दुःख और ग्लानि की बात है कि दुनिया तो विश्व-संघ, विश्व-कुटुंब, राष्ट्र-संघ, विश्व-धर्म, विश्व-सस्कृति की कल्पना कर रही है और हम इस देव-भूमि मे घड़ी, घण्टा, बाजे और पीपल काटने जैसी क्षुद्र बातों पर आपस मे लड़ाइयाँ लड़ रहे हैं। इस पर यदि हमारा राष्ट्र-धर्म हमे अमंगल का शाप दे रहा हो तो कौन आश्चर्य है? हिन्दुस्तान में से अब हिन्दू-जाति या मुस्लिम-जाति अथवा उनकी संस्कृतियो को हटाने या दबाने की कल्पना किसी को कितनी ही रम्य और सुंदर मालूम हो, पर वह 'शेख चिल्लीपन' के सिवा और कुछ नही।

हिन्दुस्तानी संस्कृति—

हाँ, दोनों जातियो और संस्कृतियो मे सुधारो की आवश्यकता है, वे हो भी सकते है—दोनो संस्कृतियो का आदर्श मूलतः भिन्न नही है, उसकी गति परस्पर विरोधिनी नही है, उनके सम्मि-

श्रण से बड़ी उम्दा भारतीय संस्कृति निर्माण हो सकती है, जो कि विश्व-संस्कृति की सृष्टि में अपना अच्छा हिस्सा दे सकेगी। वह संस्कृति न हिन्दू संस्कृति के नाम से पुकारी जायगी, न मुस्लिम नाम से। उसका नाम रहेगा, हिन्दुस्तानी संस्कृति। हर एक हिन्दू-मुसलमान, पारसी, ईसाई, अपनी अपनी जातियों की भाषा में सोचने और बोलने की अपेक्षा हिन्दुस्तान की भाषा में सोचें और बोलें। अपने अपने समाजों की सेवा और रक्षा करते हुए भी वे 'मादरे हिन्द' की सेवा को न भूलें, उनके दुःखों को न भुलावें; सब से पहले उसका काम करें। यह दिन चाहे दूर हो, पर उसके अरुणोदय की लालिमा की झलक मुझे स्पष्ट दिखाई दे रही है और इसी विश्वास पर ये पंक्तियाँ लिखी गई हैं। अस्तु।

राजनैतिक एकता—

अब रहा राजनैतिक एकता का सवाल। इसके लिए इतनी बातें होनी चाहिएँ—

(१) मुसलमान हिन्दुस्तान को अपनी मातृभूमि और अपने को उसका दुलारा बेटा मानने लगें,

(२) मुसलमान हिन्दुओं के लिए गोवध बन्द कर दें और हिन्दू मुसलमानों के लिए मसजिदों के सामने बाजा बजाना बंद कर दें,

(३) यदि कहीं दोनों जातियों में झगड़ा हो जाय तो उसका फैसला राष्ट्रीय महासभा से करवावें और उसे मानें,

(४) अपने अपने संघटन चाहे करते रहें; पर सामाजिक

सेवा और समाज-सुधार के अलावा उनका राजनैतिक उपयोग न किया जाय,

(५) अखाड़े शौक से खोले; पर उनमे हिन्दू-मुसलमान, पारसी, ईसाई, सबको आने दिया जाय,

(६) अपनी अपनी जाति के संरक्षक-दल बनाने के बजाय परस्पर सहायक-दलो का संगठन किया जाय,

(७) अपनी अपनी संख्या बढ़ाने की धुन छोड़ दी जाय,

(८) बड़ी जातियाँ छोटी जातियो को यह आश्वासन दें कि स्वराज्य मे उनके हितो की पूरी रक्षा की जायगी,

(९) यदि छोटी जातियो को इतने से इत्मीनान न हो तो बड़ी जातियाँ उनकी माँगो और ज़रूरतो के निर्णय का भार उन्हीं के उदार, स्वतत्र और राष्ट्रीय विचार के नेताओ पर छोड़कर अपनी उदारता और निर्मलता का प्रत्यक्ष परिचय दे,

(१०) राजनैतिक और राष्ट्रीय बातो मे जातिगत प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त की बुराई और माँग की बेजाइयत लेख, व्याख्यान, चर्चा आदि के द्वारा प्रेम-भाव से बताई जायँ और रफ्ता रफ्ता इस प्रवृत्ति को कम किया जाय,

(११) सब जातियो मे राष्ट्रीय विचार और भाव फैलाये जायँ तथा राष्ट्रीय बातो के मुकाबले मे जातिगत या साम्प्रदायिक बातो को महत्व न दिया जाय, और,

(१२) हर शिक्षित और बालिग़ हिन्दू-मुसलमान राष्ट्रीय महासभा का मेंबर बनना अपना कर्तव्य समझे और उसमे अपना गौरव माने ।

मै जानता हूँ कि आज ये बातें भी मखौल में उड़ा दी जायँ तो आश्चर्य नहीं। ताहम मै कहता हूँ कि यदि हमें स्वराज्य लेना है तो यह किये बिना चारा नहीं।

कठिनाइयाँ—

दो में से एक भी प्रकार की एकता मे आज सब से बड़ी कठिनाई यही है कि आज देश में उसके अनुकूल शुद्ध और सद्भाव-पूर्ण वायुमण्डल नहीं है। वह तब पैदा हो सकता है, जब या तो जातीय नेता और कार्य-कर्ता इस बात को खुद-बखुद समझ जायँ कि राष्ट्रीयता के मुकाबले मे जातीय बातों को ज्यादह महत्व देना कितना हानिकर है, या दो मे से एक जाति हार कर या थक कर दूसरी से समझौता कर ले। मेरा खयाल यह है कि शायद दूसरी बात होकर रहेगी और सम्भवतः मुसल्मानों को हार खानी पड़ेगी। स्वामी श्रद्धानन्दजी के खून ने वायुमण्डल को बहुत जोशीला बना दिया है, हिन्दुओं के तटस्थ हिन्दुओं के, दिल पर भी इससे भारी आघात पहुँचा है और यदि इस खून मे कोई साजिश साबित हुई तो हिन्दुओं की शुद्धि और संगठन को फिर वे कुछ सदोष ही क्यों न हों, शायद ईश्वर ही एकाएक न रोक सके।

एकता के अनुकूल वायुमडल उस अवस्था में भी हो सकता है, जब कि हिन्दू-मुसल्मानों पर कोई भारी संकट उमड़े। सरकार तो अब ऐसी भूल सहसा करेगी नहीं। यदि दोनों जातियाँ आपस में सलाह कर के एक बार जम कर लड़ लें और फिर सुलह कर लें—तब भी काम बन जाय, पर सरकार ऐसा मौका आने देगी नहीं।

दूसरी कठिनाई है—अफगानिस्तान के हमले का और उसके लिए मुसलमानो की साजिश का भय। यदि कुछ मुसलमानो की ऐसी ख्वाहिश भी हो, उन्होने ऐसी साजिश भो की हो, तो एक तो यह उनकी दुनिया की हालत का और अपनी हालत का अज्ञान सूचित करता है और दूसरे हमारा उससे भय-भीत होना हमारा भी अज्ञान प्रकट करता है। आज यदि हिन्दुस्तान के सारे मुसल्मान अफग़ानिस्तान से मिल जायँ और तुर्कस्तान तथा ईरान भी उनकी मदद के लिए दौड़ आवे तो भी अफगानिस्तान अँगरेजो और उनके मित्रो के मुकाबले मे हिन्दुस्तान सर नहीं कर सकता। अफ़ग़ानिस्तान को यदि हिन्दुस्तान के मुसल्मान बुलाना चाहते हों तो अफ़गानिस्तान को बेवकूफ कहना होगा, यदि वह उनके भरोसे हिदुस्तान पर चढ़ाई करने के लिए आमादा होगा। वह अच्छी तरह जानता है कि मुसरमान हिन्दुस्तान मे गुलाम हैं, न उनके पास हथियार हैं, न अंगरेजो के मुकाबले में वे युद्ध-कुशल ही हैं। तुर्कस्तान खुद अपने ही हाथ-पाँव अभी मजबूत नहीं कर पाता है तो वह यह नई आफत क्यो मोल लेने लगा ?

यदि अफ़ग़ानिस्तान खुद ही यहाँ के मुसलमानो को अपना हथियार बनाकर यहाँ धावा बोलना चाहता हो तो यह सोचने की बात है कि वह ऐसा क्यों करना चाहता होगा और किस हालत में कर सकेगा ? यदि वह इस्लाम के प्रचार के लिए ऐसा करना चाहता हो तो, एक तो वह हिन्दुस्तान के मुसल्मानो के इतना धर्मान्ध नहीं है, दूसरे, तुर्कस्तान और ईरान आदि भी न तो इतने

धर्मान्ध हैं, न इसके लिए तैयार ही हैं—जिस तुर्कस्तान ने खुद ही अपने राज्य से खिलाफ़त को निकाल दिया, जिसके सिर पर तुर्की टोपी—नहीं अब तो तुर्की टोपी भी फेंक दी है—और नाम 'टर्क' के सिवा जिसके पास इस्लाम का कोई चिह्न नहीं रह गया है वह धर्म-प्रचार में क्यों अफ़गानिस्तान या हिन्दुस्तान के मुसलमानों की मदद करने लगा? और बिना तमाम मुस्लिम कौमों या ताकतों की इमदाद के न अफ़गानिस्ता, न धार्मिक आक्रमण करने में, न हिन्दुस्तान के मुसलमान उसे कराने में सफल हो सकते हैं।

यदि अफ़गानिस्तान राजनैतिक हमला करना चाहता हो तो जब तक एशिया या योरप के दूसरे राष्ट्र या शक्तियाँ उसके सहायक न हों, तब तक उसका यह हौसला नहीं हो सकता। और वे दूसरे राष्ट्र क्यों अफ़गानिस्तान को इस काम में मदद देने लगे। यदि उसमें उसका भारी स्वार्थ न हो। और यदि कोई एशियाई या यूरोपीय राष्ट्र इतनी भारी-ब्रिटिश सल्तनत से लोहा लेने की महत्वाकांक्षा रखता है तो फिर खुद ही आगे क्यों न बढ़ेगा? हाल ही जर्मनी ने यह हौसला किया था और उसका नतीजा हमारे सामने है। राजनैतिक ज्योतिषी निकट भविष्य में अमेरिका या इंग्लैंड अथवा इंग्लैण्ड और जापान में युद्ध होने का अनुमान करते हैं—बहुत संभव है कि इस युद्ध का लक्ष्य-केन्द्र भारतवर्ष हो, क्योंकि भारत के बिना ब्रिटिश साम्राज्य कुछ भी नहीं है। पर वह युद्ध प्रधानतः राजनैतिक न होगा; व्यापारिक होगा—राजनीति-मूलक न होगा, व्यापार-मूलक होगा। और ऐसा कोई युद्ध यदि कभी भविष्य में हुआ भी, तो वह हिन्दु-

स्तान के मुसलमानों की साजिश के या—अफ़गानिस्तान की महत्त्वाकाँक्षा के फल-स्वरूप न होगा और उस मे न हिन्दुस्तान के मुसलमानों का, न अफ़गानिस्तान का, गहरा स्वार्थ सधेगा। उसके फलाफल या सुख-दुःख हिन्दुओ और मुसलमानो के लिए प्रायः समान होंगे। वह हिन्दुओं और मुसलमानों की एक ही समस्या होगी। यदि अफ़गानिस्तान और बोल्शेविक रूस की मित्रता से यह भय उत्पन्न हुआ हो तो भारत के हिन्दू-मुसलमानों की समस्या नही है, न इससे उसका कुछ संबंध ही है। यह तो शाशन-पद्धतियों, शाशन के आदर्शों, समाज-व्यवस्थाओ और सामाजिक आदर्शों मे क्रान्ति की समस्या है। यह तो दुनिया के गरीबो और अमीरो के संबंध की समस्या है। यह मजदूरो और मालिको के ताल्लुकात का मसला है।

और घड़ी भर के लिए मान ले कि अफ़गानिस्तान हिन्दुस्तान पर चढ़ाई के लिए आ रहा है तो हम हिन्दुओ को ही इसका इतना अधिक भय और चिन्ता क्यो ? इसकी चिन्ता अँगरेजो को ज्यादह होगी या हमें ? यदि भारत अँगरेजो के हाथ से निकल गया तो हमारा ज्यादह नुकसान होगा या अँगरेजो का ? और क्या अँगरेज़ अपने भारत की रक्षा के लिए काफी नहीं है ! भारत की चिन्ता करने के अधिकारी हम तब होंगे, जब भारत हमारा होगा। कौन कह सकता है कि अफ़गानिस्तान का राज्य भारत मे अँगरेजों के राज्य से बुरा ही होगा ? और यदि हिन्दू ऐसा समझते हो कि बुरा ही होगा और सचमुच अफ़गानिस्तान हिन्दुस्तान पर चढ़ कर आ रहा हो तो हिन्दू उस समय अपने देश की रक्षा

में मर मिटे। पर यदि हिन्दू इस तरह अफ़ग़ानिस्तान के खिलाफ़ वर्तमान अँगरेज़ी भारतवर्ष के लिये मर मिटने को तैयार हों तो फिर भारतवर्ष को अपना बनाने के लिए मौजूदा सरकार से जूझना क्यों छोड़ बैठे हैं? क्यों असहयोग के असफल होने की आवाज़ उठ रही है, क्यों सविनय भंग के संबंध में निराशा के उद्गार सुनाई देते हैं, क्यों खादी और चरखे का पैग़ाम मानो बहरे कानों तक पहुँच रहा है, क्यों हिन्दू-मुसलमान आपस में समझौता नहीं कर पाते हैं?

यदि अफ़ग़ान-भय आज के लिए नहीं, स्वराज्य-प्राप्ति के बाद के लिये है तो यह और भी निर्मूल है। जो भारत बलाढ्य इंग्लैण्ड को पछाड़ कर हिन्दुस्तान ले लेगा, वह अफ़ग़ानिस्तान का मुक़ाबला न कर सकेगा, यह शंका तो भारत की राजनीति का बालक भी न करेगा। आज भारत में हिन्दू प्रबल हैं। इसलिए भारतीय स्वराज्य का अर्थ होगा। प्रधानतः हिन्दुओं के बल से मिला। स्वराज्य अर्थात् स्वराज्य में भी हिन्दुओं का बल प्रधान होगा। और जो हिन्दू आज गुलामी में भी मुसलमानों के दाँत खट्टे कर सकते हैं, वे क्या स्वतंत्र होने पर उनकी साजिशों का दमन न कर सकेंगे? फिर स्वराज्य हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना असंभव है। हिन्दू-मुस्लिम-एकता के मानी हैं—हिन्दुओं और मुसल्मानों आदि का स्वराज्य-सञ्चालन-संबंधी समझौता। यह समझौता तभी हो सकता है, जब या तो दोनों जातियों के हृदय में परिवर्तन हो जाय, या एक हार जाय। यदि पहली बात हुई तो फिर किसी एक जाति की साजिशों का भय व्यर्थ है। यदि दूसरी बात हुई

और उसमें जैसा कि मेरा ख़याल है, मुसलमानो की हार हुई तो अवश्य समझौते की शर्तें हिन्दुओ के अनुकूल ज्यादह होंगी। यदि हिन्दुओं को हारना पड़ा—यदि हिन्दू इतने कमज़ोर साबित हुए तो फिर अफ़गान-भय का रोना रोने से क्या फ़ायदा? इस तरह यह कठिनाई, जहाँ तक मै विचार करता हूँ, एक कल्पित भूत से बढ़कर नहीं है।

तीसरी कठिनाई है—दोनों जातियों के नेताओं और कार्य कर्ताओं की मनोवृतियाँ—किसी आन्दोलन या संस्था के कार्य की सफलता-विफलता या सुपरिणाम-दुष्परिणाम योजनाओं, प्रस्तावो, और व्यवस्था-पत्रों पर उतनी नही अवलंबित रहती जितनी नेताओं, कार्य-कर्ताओं के भावों, स्वभावों और हेतुओ पर अवलम्बित रहती है। योजना, प्रस्ताव, व्यवस्था-पत्र आदि एक हद तक निस्संदेह प्रवर्तको, नेताओ, कार्य-कर्ताओ के भाव और हेतु के द्योतक होते हैं; परन्तु वह भाव और हेतु जिस हद तक सोलहो आना योजनाओ, प्रस्तावो और व्यवस्था-पत्रो द्वारा ठीक ठीक प्रकट होता है और जिस हद तक वे उसी उत्साह, लगन, सद्भाव और सावधानी-पूर्वक वैसा कार्य करते हैं, उसी हद तक वे अपने कार्य की और समाज की सेवा कर पाते है। सत्कार्य, सत् आन्दोलन इसलिए नही असफलता या कुपरिणामदायी होते हैं कि लोगो ने उन्हें अपनाया नही, किसी ने उसमे विघ्न डाला, बल्कि इसलिए होते हैं कि प्रवर्तक, या नेता, या कार्य-कर्त्ता या तो अपने तईं सच्चे नही रह पाते, या काफ़ी सावधानी नहीं रखते। असहयोग-आन्दोलन इसलिए नहीं बिखर गया कि लोगों ने उसे अप-

नाया नहीं; या किसी बाहरी दल या समूह ने उसमें विघ्न डाल दिया; बल्कि इसलिए बिखरा कि नेतागण और हम कार्य-कर्ता उस लोहे के, उतने सच्चे नहीं रह पाये जितना हम दिखाते थे, या चाहते थे। हिन्दुओं और मुसल्मानों के शुद्धि-संगठन या तबलीग-तन-जीम मूलतः नीति-प्रतिकूल नहीं। दोनो की प्रातिनिधिक संस्थाओं की योजनाओं, प्रस्तानो से कोई बात नीति की दृष्टि से आक्षेप-योग्य नही। नेताओं के भाषणो मे भी, असावधानी-पूर्वक या जोश मे कहे कुछ आक्षेपार्ह वचनों या वाक्यांशों को छोड़कर, कोई बात खास तौर पर अनीति-मूलक न दिखाई देगी। दोनों जातियो के प्रधान नेता बराबर सभाओं में यह कहते हैं कि हमें एकता पसंद है, उसके बिना स्वराज्य न मिलेगा; फिर भी क्या बात है कि दोनों जातियों में कटुता, तीखापन और अविश्वास बढ़ता ही जा रहा है? यह ठीक है कि समाज में एक ऐसा दल हुआ करता है जो अपनी स्वार्थ-हानि के कारण, या भय से, या अपनी महत्वाकांक्षाओं को सिद्ध करने के लिए, ख्वामख्वाह एक दूसरे के खिलाफ जहर उगला और आग फैलाया करता है। पर यदि हमारे कार्य और आन्दोलन का हेतु अच्छा हो और हम उसी अच्छी भावना से काम भी करते हों तो ऐसे विघ्न-सन्तोषियों की कलई शीघ्र खुल भी जाती है और वह दोनो दलो का तिरस्कार-पात्र भी हो जाता है। इस दल की बात छोड़ देने पर भी मुझे कुछ हिन्दू-मुस्लिम नेताओं और कार्यकर्ताओं की मनोवृत्ति के बारे में कुछ कहने की जरूरत मालूम होती है। अपने एक आदरणीय मित्र की, जो कि समाज और देश के एक प्रभावशाली सेवक हैं, एक बात मुझे

बार बार याद आया करती है। वे कभी कभी कहा करते हैं कि असहयोग की उठती लहर के जमाने मे मैने महात्माजी से कहा था—'महात्माजी, आपके आन्दोलन मे पापी लोग घुस आये है—वे आपके तख्ते को उलट देंगे।' महात्माजी जवाब देते—'हाँ, ठीक है; पर मै उन्हे चुनकर निकालने मे असमर्थ हूँ।' अब वही बात मैं मालवीयजी से कहता हूँ—'महाराज, जैसे पापियो ने असहयोग की नाव को डुबोया, वैसे ही आपके आन्दोलनों मे आ घुसे है—होशियार, ये इस नाव को भी ख़तरे मे डाल देंगे।' मालवीयजी भी वही जवाब देते हैं जो महात्माजी ने दिया था। यह बात जितनी ही सच है; उतनी ही भयंकर है। जो बात हिन्दू-कार्यकर्ताओं पर घटती है वह, उससे कहीं अधिक, मुस्लिम-कार्यकर्ताओ पर घटती है। कहने का मतलब यह कि दोनो आन्दोलनो में कम या ज्यादह ऐसे लोग हैं, जो अपने या अपने काम के तईं सच्चे नहीं हैं, जो चाहते कुछ और है, कहते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं। दोनो आन्दोलनो मे तीन प्रकार की मनोवृत्ति वाले लोग पाये जाते हैं—(१) वे जो सचमुच एकता चाहते हैं और एकता को साधन के ख़याल से हिन्दू-मुस्लिम-आन्दोलनो में पड़े है (२) वे जो एकता के कायल तो हैं; पर अपनी जातियो की रक्षा और वृद्धि को पहला स्थान देते हैं (३) वे जो एकता दरअसल नहीं चाहते, सिर्फ मसलहतन् एकता का नाम ले लिया करते है। मेरा ख़याल है कि दोनों जातियों मे दूसरी और तीसरी श्रेणी के लोग ज्यादह हैं; मुसल्मानों मे संभव है, तीसरी श्रेणी के लोग बढ़ जायँ; पर उनके समाज का मुझे ठीक

ठीक पता नहीं, इसलिये ठीक अन्दाज नहीं हो सकता। देश में इस समय भी एक ऐसा समुदाय है, जो वर्तमान शुद्धि-संगठन, तबलीग़ तनज़ीम को एकता के लिए आवश्यक नहीं मानता; वह अपने को राष्ट्रीय विचार वाला कहता है। इससे इन झगड़ों और आन्दोलनों का कोई संबंध नहीं। वे या तो उन्हें अनुचित समझते हैं या तटस्थ हैं। हिन्दू-मुसलमान-आनन्दोलनों में यदि पहले दल की बहुतमत होती, तो कटुता और अविश्वास इतने उग्र रूप से न दिखाई देता। यह एहसानमन्द है तीसरे दल की स्थिति, उग्रता और प्रभाव के तथा दूसरे दल की तीसरे दल के प्रति साहिष्णुता-भाव के। तीसरे दल को कमज़ोरी और ज़हर का घर कह सकते हैं। कमज़ोरी यह कि उसे अपना उद्देश साफ़ साफ़ कहने की हिम्मत नहीं—दबे-छुपे, खानगी में, वे ज़हर उगलते और फैलाते हैं। ज़हर है उन के बुरे, गंदे, कमीने ख़याल और उनके प्रचार के वैसे ही नीच और गंदे साधन। वे दोनों की थोड़ी बुरी बातों और छोटी ग़लतियों को बहुत बड़ा बना कर फैलाते हैं, घटना को, समाचारों को, वक्तव्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश करते हैं—भय के कल्पित भूत खड़े करते हैं; 'तुम कमज़ोर हो, तुम कायर हो, तुम बोदे हो, कह कर अपनी कमज़ोरी, कायरता या बोदापन समाज में बुरी तरह फैलाते हैं; कहते हैं 'वह एक लड़की उड़ायेगा तो हम दस उड़ायेंगे, वह एक झूठा गवाह बनायेगा तो हम दो खड़े कर देंगे, सत्य और धर्म के हामी हो तो कोने में बैठ रहो; जाति की रक्षा करनी हो, जाति को ज़िन्दा रखना हो तो वह जैसा करेगा, वैसा ही हमें भी करना

पड़ेगा।' और यह अपने को प्रथम दोनो दलों से ज्यादह अक़्ल मन्द, ज्यादह बहादुर, ज्यादह क़ौमपरस्त, ज्यादह होशियार समझता है। यदि दोनो जातियो के मुखिया इस दल को अपने कब्ज़े मे रख सके, उनके नीति और धर्म के खिलाफ़ कामो की बार बार निन्दा किया करें और उन्हे फटकारा करें, तो दोनों जातियों के आन्दोलनो के चलते हुए भी अविश्वास, भय और संदेह का बाजार इतना गर्म न रहे। जनता और कार्यकर्त्ताओं को जाने दीजिए—दोनों के नेताओ को तो एक दूसरे की नीयत साफ़ होने का विश्वास होना चाहिए न? पर आश्चर्य यह है कि कार्यकर्त्ताओ और नेताओ मे ही, अक्सर ज्यादह अविश्वास, संदेह और भय दिखाई देता है और, शायद, वही वहाँ से जनता मे फैलता है। नेताओं के पारस्परिक मतभेद की बात तो समझ मे आ सकती है; पर यह द्वेष, अविश्वास, नीयत पर शक, बिलकुल समझ मे नही आता। प्रतिपक्षी चाहे हमारे मत से नाराज़ हो, हमारे काम को अपने लिए बुरा समझता हो, हमारा विरोध भी प्राणपण से करता हो; पर हमारे हेतु पर, हमारे शील-चारित्र्य पर हमारी कार्य-प्रणाली की शुद्धता पर तो उसे शक कदापि न रहना चाहिए। वह मैदान मे चाहे भले ही हम से दो दो हाथ कर ले; पर घर मे, अपनी मण्डली मे, तो ज़रूर हमारी सचाई की तारीफ करे। यदि यह स्थिति नही है तो दोनो जातियो के नेताओ और कार्यकर्ताओ को गंभीरता और धार्मिकता के साथ इस स्थिति पर विचार करना चाहिए। मै जहाँ तक सोचता हूँ ऐसी स्थिति तभी उत्पन्न हो सकती है, जब या तो (१) किसी

की नीयत और कार्य-प्रणाली दरअसल साफ़ न हो या (२) हम समाज के सुख-दुःख की भावना से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि व्यक्तिगत मानापमान के भाव से उत्तेजित हो कर किसी हलचल में पड़े हों, या (३) सस्ती लोक-प्रियता कमाने अथवा सस्ता-नेता बनने की महत्वाकांक्षा ने हमें धर दबाया हो। यदि मेरा यह स्थिति-निरीक्षण ठीक हो और उसका निदान भी सही हो, तो क्या दोनों आन्दोलनों के प्रेमी, कार्यकर्त्ता और नेतागण तक मेरे ये क्षुद्र विचार पहुँचेंगे, क्या वे उन पर विचार करेंगे ?

कुछ कार्यकर्ता यह भी मान बैठे हैं कि इन दोनों जातियों में एकता हो ही नहीं सकती, एकता होना उचित भी नहीं, लखनऊ से अब तक मुसलमानो से समझौते या एकता के प्रयत्नों का फल अधिक फूट में हुआ, मुसलमानों पर उसका कुछ असर न हुआ, वह एकता थी ही नहीं, एकता का भ्रम था आदि। इस पर मेरा यह निवेदन है कि एकता तो होगी और होकर रहेगी। इसके कारण मै पहले ही बता चुका हूँ। एकता उचित नहीं है, यह कहना स्वराज्य और स्वाधीनता उचित नहीं है, ऐसा कहने के बराबर है। और यह कहना कि न हमें स्वराज्य दरकार है, न स्वाधीनता, अपने घोर अज्ञान को प्रकट करना तथा मानुष-भावों से इनकार करना है। यदि लखनऊ में समझौता न होता और अब तक एकता के लिए कोशिश न की गई होती तो आज देश में घर-घर स्वराज्य का जप होता हुआ न दिखाई पड़ता; जोश, चैतन्य उत्साह की लहर चारो ओर न देख पड़ती। वर्तमान कटुता एकता के प्रयत्नों का फल नहीं, आवश्यक और उचित प्रयत्न की

कमी का फल है। वह स्थायी एकता चाहे न रही हो, काम चलाऊ एकता ज़रूर थी और यदि हम अपना रास्ता न छोड़ देते तो वह स्थायी रूप ग्रहण कर सकती थी। स्थायी एकता के मानी हैं—जाति विशेष के स्वभाव पर स्थायी असर। दो चार वर्षों की आजमाइश, सो भी पूरी और तहेदिल से नहीं, इसके लिए काफ़ी नही समझी जा सकती। मेरा खयाल है कि ऐसी मोटी बुद्धि और अवांछनीय मनोवृत्ति भी एकता के मार्ग मे कम रुकावट नहीं है! कार्यकर्त्ताओ को सूक्ष्म विचार और दूसरे के साथ न्याय करने की वृत्ति बनानी चाहिए।

कुछ लोग यह भी कहते है कि इस फूट के कारण खुद गाँधीजी ही है जिन्होने राजनीति मे धर्म को—खिलाफ़त को घुसेड़ कर मुसलमानों को अधिक धर्मान्ध तथा कट्टर बना दिया, जिससे उन्हे हिन्दुओं पर ऐसे अत्याचार करने की सूझी। यह कहना न खिलाफ़त को समझना है, न धर्म को समझना है, न गाँधीजी को समझना है। खिलाफत का समर्थन महात्माजी ने इसलिए किया था—मुसल्मान उसे अपने धर्म का मसला मान रहे थे और यों भी वह धर्म और नीति के नियमों के विरुद्ध न था। अपने भाई, मित्र या पड़ोसी के संकट में सहायता देना, उन्होंने अपना धर्म समझा। धर्म की व्याख्या मै ऊपर कर चुका हूँ। मनुष्य का सारा जीवन आरंभ से अब तक, धर्म की परिधि से बाहर नहीं हो सकता! राजनीति मानव-धर्म का एक अंग है। धर्म-सिद्धान्त और धर्म-भाव से पृथक् राजनीति स्वार्थ-नीति, शैतान-नीति है और गले की फाँसी है। गाँधीजी ने यह कभी नहीं कहा

कि धर्म-शास्त्र की बाहरी बातों का प्रभुत्व राजनीति में हो। उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि सिर्फ मूर्ति की पूजा करने वाला, या पाँच दफा नमाज़ पढ़ने वाला, या चोटी अथवा दाढ़ी रखने वाला ही किसी संस्था का सदस्य हो, या किसी आन्दोलन में शरीक हो। हाँ, उन्होंने यह ज़रूर चाहा कि राजनैतिक और राष्ट्रीय कामों में भी उन्हीं नीति-नियमों का सचाई के साथ पालन किया जाय, जो कि धर्म के प्राण-रूप हैं। वे राजनीति को लूट का साधन नहीं रहने देना चाहते। वे उसे मानव-सेवा का, धर्म-भाव का साधन बनाना चाहते हैं। क्या यह बुरा है? इसे बुरा सिर्फ वही लोग कह सकते हैं जिनकी स्वार्थ-हानि इससे हो सकती है। फूट, राजनीति में धर्म-नीति का प्रवेश करने से नहीं, बल्कि धर्म-भाव-हीन राजनीति का बोलबाला रहने से फैली है। धर्म और राजनीति का यह अस्पष्ट विचार और उससे उत्पन्न दोष-दुष्ट मनोभाव भी एकता में कम बाधक नहीं हैं।

चौथी कठिनाई है—हमारी मौजूदा सरकार। यह हिन्दू-मुस्लिम-एकता की ही कठिनाई नहीं है, हिन्दुस्तान की ज़िन्दगी की कठिनाई है। यह केवल हिन्दु-मुस्लिम-एकता के मार्ग में ही एक समस्या नहीं है, बल्कि भारत के लिए खुद भी एक समस्या है। जब तक हममें एकता नहीं है, तब तक हम उसे मिटा या बदल नहीं सकते, तब तक वह हमारी छाती पर मौजूद रहेगी। उसके रहते हुए भी हमें यह समस्या हल करनी होगी। यह तभी हो सकता है जब हम उसके प्रभाव और दायरे से अपने को जितना बचा सकें, बचावें। उसके कल-पुर्ज़ों की सलाहें मानने के

बनिस्बत देश के नेताओं की, राष्ट्रीय महासभा की, सलाहों पर चलें। आज हिन्दू और मुसल्मान इसलिए भी लड़ रहे है कि किसको कितने सरकारी-पद मिले—कौन सरकार का ज्यादह आउर्दा, खैरख्वाह और मूँछ का बाल बनकर रहे ? बजाय इसके हमारे दिलो मे यह हौसला होना चाहिए कि हम राष्ट्रीय महासभा के होकर किस तरह रहे। हमे याद रखना चाहिए कि आज की राष्ट्रीय महासभा, हमारी कल की सरकार है। यदि हम आज की सरकार की ही बगल में चिपके रहेगे तो कल की सरकार हमसे दूर, और हम उससे दूर, रहेगे।

पॉचवी कठिनाई है—एकता के मार्ग की उलझन—अभी दोनो जातियो के नेता इस सवाल को हल नही कर पाये हैं और इस बात में राष्ट्रीय नेताओ मे और उनमें मतभेद है कि एकता का मार्ग प्रेम के दरवाजे से होकर जाता है या भय की करारों से। दूसरे शब्दो में कहे तो मित्रता का मूल प्रेम है या भय—इसका तस्फ़िया अभी नही हो पाया है। प्रेम दो आदमियों को नजदीक लाता है या भय? कुटुम्ब और घर मे प्रेम का तत्व चलता है या भय का? प्रेम भाइयों के दिलों को मिलाता है या भय? इस पर कोई कहेगा—हिन्दू-मुसलमान आज एक दूसरे को भाई नहीं समझते है। तो मै पूछता हूँ, क्या दोनो जातियो के नेताओ की भी यही राय है? यदि हाँ, तो फिर उन्हे स्वराज्य और एकता का नाम मुँह से न निकालना चाहिए। और यदि यह मान भी ले तो मै पूछता हूँ, यह शत्रुता आख़िर चाहती क्या है? दो मे से किसी एक को मिटा देना? यदि दोनों का समझौता, मित्रता या एकता ही

हमारी मौजूदा लड़ाइयों का अन्तिम परिणाम सोचा गया हो, तो फिर मैं पूछता हूँ कि वह परिणाम प्रेम के रास्ते ज्यादह जल्दी, ज्यादह अच्छा निकलेगा, या भय के रास्ते ? लड़ाई भी हम प्रेम से लड़ सकते है। प्रेम की लड़ाई दोनों का हित चाहती है, भय की लड़ाई एक का हित। हम एक ओर एकता चाहे, और दूसरी ओर भय की लड़ाई के द्वारा एक का हित साधें, ये दोनों बातें एक साथ कैसे रह सकती हैं ?

यह सच है कि प्रेम से भय का रास्ता सरल मालूम होता है। प्रेम यों देखने मे बहुत कीमत चाहता है, खरा सोना चाहता है, पर वास्तव मे भय से वह बहुत कम साधन, कम झंझट, कम परेशानी और कम चिन्ता चाहता है। वह सिर्फ यही चाहता है कि मेरा भी उतना ही हित चाहो, जितना अपना चाहते हो। कौन कह सकता है कि प्रेम की यह मॉग बेजा या ज्यादह है ? भय इसका जवाब देता है कि तुम मुझ से दब कर रहना चाहते हो तो तुम्हारी बात कबूल करूँगा। यदि हिन्दू-मुसलमान यह चाहते हो कि हिन्दुस्तान मे दो मे से एक, दूसरे से दब कर रहे, डरता रहे तो मित्रता या एकता की आशा व्यर्थ है। यदि एकता और मित्रता वास्तव में हमारा लक्ष्य है तो भय का रास्ता हमारे लिए बंद है।

पर हम तो पहले ही भय के रास्ते चल पड़े हैं। 'भय बिनु प्रीति न होत' को अपना सिद्धान्त मानकर इन दिनों हिन्दू-मुस्लिम नेता चल रहे हैं। हो सकता है कि एक का भय आक्रामक और दूसरे का रक्षात्मक हो। पर हो रहे हैं दोनों भय के ही पथ के पथिक।

प्रेम का रास्ता देने, देते रहने और फिर भी न अघाने का रास्ता है। प्रेमी दे कर दूसरे के मन मे स-व्याज लौटाने का कर्त्तव्य जाग्रत करता है। भय-दर्शक कुछ न देकर ले लेना चाहता है। हिन्दू-मुसलमान दोनो एक दूसरे से छीनना चाहते है; देकर ज्यादह लेने का रास्ता उन्हे पसंद नही। पर हम देख सकते है कि यही एक-मात्र रास्ता है। तो सवाल यह है कि भय का रास्ता छोड़कर प्रेम के रास्ते कैसे आवे? यदि दो मे से एक भी दल के नेता इसके कायल हों तो भी यह संभव हो सकता है। ऐसा मालूम होता है कि भय के रास्ते से हम तभी हटेंगे, जब या तो उसके बुरे फलों से हमारी आत्मा मे ग्लानि पैदा होगी या जब एक, दूसरे को भयभीत करने मे कृतार्थ हो जायगा।

एकता के साधनों और कठिनाइयों पर अब तक जो विचार किया गया है तथा जितना अधिक विचार किया जाता है, उतना ही उसकी वर्तमान उलझनो को देखकर दिमाग चक्कर खाने लगता है और दिल कहने लगता है कि सब बातें परमात्मा पर छोड़कर प्रार्थना और आशा करते रहना तथा अपने से जो कुछ हो सके करते रहना ही अच्छा है।

---

७ स्वामीजी का खून और हमारा कर्त्तव्य

दिल का उफान—

यहाँ तक हमने देखा कि हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न क्या है, भारत को हिन्दू-मुस्लिम-एकता की कैसी आवश्यकता है, उसके लिए अब तक क्या क्या प्रयत्न हुए, वे कैसे सफल न हुए, दोनों में वैमनस्य क्यों है तथा एकता किस तरह हो सकती है और उसमें क्या कठिनाइयाँ हैं। पिछले सब प्रकरणों का निचोड़ यह है—

(१) भारतीय स्वराज्य के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता अनिवार्य-शर्त है,

(२) एकता के दो रूप हैं, संस्कृति की एकता और राजनैतिक एकता—संस्कृति की एकता के लिए मुसलमानों की हिंसावृत्ति कम होना तथा हिन्दुओं की जड़ता का उन्मूलन होना आवश्यक है। राजनैतिक एकता के लिए छोटी जातियों की माँग बड़ी जातियाँ स्वीकार कर लें—यही अर्थात् प्रेम का एकमात्र राजमार्ग है, और

(३) शुद्धि-तबलीग और संगठन-तनजीम के रूप में थोड़े संशोधन की आवश्यकता है।

इनमें से बहुतेरी बातें प्रायः सब हिन्दू-मुसल्मान-नेता, कार्यकर्त्ता और शिक्षित लोग जानते हैं; फिर आज इन बातों को इतने

विस्तार से लिखने की जरूरत क्यो पड़ी ? इसलिए कि—मैं हिन्दू-मुसलमान-विद्वेष और हिंसाकाण्ड को देश का महान् दुर्भाग्य और संकट समझता रहा हूँ तथा शुद्धि संगठन और तबलीग़-तनजीम की वर्तमान गति-विधि पर भी मेरे कुछ आक्षेप हैं—पर इनमे पड़ने की योग्यता और शक्ति का अभाव अपने मे पाकर, मै इन बातो मे कुछ समय से तटस्थ रहा हूँ। हाँ, इधर इधर मन में यह प्रेरणा जरूर होने लगी थी कि हिन्दू-संगठन को शुद्ध रूप देने और उसका सामाजिक उपयोग करके हिन्दू-समाज की सेवा, मे अपनी शक्ति लगाऊँ—इतने ही मे स्वामी श्रद्धानन्दजी के अमानुष खून ने मेरे हृदय को कँपा दिया, जिससे मेरे दिल का यह उफान बरबस निकल पड़ा। जिस तरह वह खून हुआ, वह तो हिन्दू-जाति, हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-धर्म की उच्चता, श्रेष्ठता, का मानो दुनिया मे डंका पीट रहा है और मुसलमानो की जंगली धर्म-मान्यता और पशुता की गवाही दे रहा है। ज्यो ज्यो तहक़ीक़ात मे यह सूत मिलता जाता है कि इसके पीछे एक मुसलमानो की साजिश है, त्यों त्यो हर हिन्दू-मुसलमान के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस समय हमारा क्या कर्तव्य है। कुछ बिगड़े-दिल मुसलमानो को छोड़कर इस खून पर प्रायः सब लोगो और दलो को अफसोस हुआ है; लेकिन इसका असर जुदा जुदा दलो पर जुदा जुदा रूप में हुआ है। उन सबके कर्तव्य का हम यहाँ अलहदा अलहदा विचार करे। वे दल इतने हो सकते है—(१) हिन्दू-मुस्लिम हलचलो मे पड़े हुए हिन्दू-मुसलमान (२) राष्ट्रीय विचार के हिन्दू-मुसलमान (३) सरकार तथा (४) अन्य

हिन्दुस्तानी। इनमें सबसे पहले शुद्धि-संगठन में लगे हुए हिन्दुओं के कर्त्तव्य पर विचार करें।

हिन्दुओं का कर्त्तव्य—

उन्हें सबसे पहले यह सोचना चाहिए कि स्वामीजी महाराज का खून क्यों हुआ, किन कारणों ने यह परिस्थिति पैदा की फिर यह विचारें कि स्वामीजी महाराज का श्रेष्ठ स्मारक क्या हो, उनका अंगीकृत-कार्य क्या था और वह कैसे पूरा हो?

मेरी समझ में स्वामीजी महाराज के खून के योग्य परिस्थिति पैदा होने के दो कारण हैं—(१) दोनों तरफ़ के संवाददाताओं, अख़बारनवीसो, ग़ैरज़िम्मेवार कार्य-कर्ताओं की नीति-अनीति और हानि-लाभ की परवा किये बिना एक दूसरे के ख़िलाफ़ प्रचार करने की उत्तेजना और (२) मुसलमानों का यह जंगली या ग़लत ख़याल कि काफ़िर की जान मार देना अल्लाह की मेहर हासिल करना है और नेताओं के मार डालने से शुद्धि-संगठन बंद हो जायगा। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि शुद्धि-संगठन कोई नीति-विरुद्ध काम नहीं है। यदि अधिकांश हिन्दू आज अपने लिए इसकी जरूरत समझते हैं, तो उन्हें ऐसा करने का बराबर हक़ है और दुनिया की कोई दुर्घटना उन्हें रोक नहीं सकती। पर हम नीति और धर्म की उच्चता का दावा करनेवाले हिन्दुओं का यह भारी कर्तव्य है कि हम जोश में, या उलझे हुए ख़यालात के कारण ऐसा काम न करें जो हमारे उच्च धर्म, संस्कृति और जाति के बड़प्पन को बट्टा लगाते हों। अपनी इसी अच्छाई और ऊँचाई के बल पर तो हम दुनिया को अपना बना लेने की, दुनिया

को अपनी ओर खींच लेने की आकांक्षा रखते है—इसी को खो देंगे तो दुनिया हमे क्यो पूछने लगेगी? दुनिया हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृति को हमारे धर्म-ग्रन्थो मे या पिछले इतिहासों मे देख कर हमारे साथ नही दौड़ी आवेगी, उससे तो हमारी तरफ बहुत हुआ तो उसका ध्यान आकर्षित हो जायगा; पर आज वह हमारा आदर तभी करेगी, जब हम अपने धर्म और संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि होकर रहेगे—हम उन तमाम नियमो को निबाहेगे जो धर्म के और संस्कृति के उच्च नियम है? अतएव हम हर हिन्दू ऐसा बनने का प्रयन्त करे कि जिसे देख कर हर आदमी यही कहे—यानी यह हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति का साक्षात् अवतार है। हम अपने इस चरित्र बल पर ही संसार मे अपने धर्म और संस्कृति को फैलाने की आशा कर सकते है। इसलिए ऐसा दावा करने, या उसके लिए प्रयत्न करने के पहले, अथवा साथ ही साथ, हम इस बात का भी पूरा उद्योग करें कि हम दुनिया की नजर मे ऊँचे रहे—हमारे हीन चरित्र को, हमारी गंदी बातों को, हमारी कु-करतूतों को देखकर दुनिया की दृष्टि हमारे धर्म और संस्कृति की ओर से फिर जायगी—जिस समाज मे सत्य का गला घोंटा जा सकता हो, धन देकर जो चाहे कहलवा और लिखवा लिया जा सकता हो, जिसमे दुराचार फैला हुआ हो, दूसरों की बुराई ही देखी और फैलाई जा सकती हो—जोश के आगे विवेक और अक़ल की बात ठुकराई जा सकती हो, उसमें आकर सुख और शान्ति पाने की कौन उम्मीद करेगा? मुस्लिम-संस्कृति को हम क्यों इतना कोसते हैं? इसीलिए न कि

आज के कितने ही मुसलमान गुण्डे से बन गये हैं। उन्हें देख कर किसी का आदर मुस्लिम-जाति की ओर बढ़ रहा है ? फिर वैसे ही गुण्डे बन कर हम क्या अपनी जाति और संस्कृति की सेवा करेंगे। हमारे व्याख्यानों और लेखों से नहीं, अपने सदाचार और सौजन्य से हम अपने प्रति औरों का आदर-भाव बढ़ा सकते हैं और उन्हें अपने दायरे में ला सकते हैं। धर्मान्तर या शुद्धि का यही सच्चा तरीक़ा है।

शान्ति के साथ विचार करने पर हमें मानना होगा कि स्वामी जी महाराज के खून हो सकने वाली परिस्थिति पैदा होने में हम हिन्दू भी कारणीभूत हैं। यदि मेरा यह ख़याल ठीक है, तो हमें अब आगे, इन बुराइयों से तो बाज़ आना चाहिए—पर अपना काम धड़ाके से जारी रखना चाहिए।

इस पर शायद कोई यह कहे कि हमें स्वामी जी महाराज के ख़ून पर दुःख ज़रा भी नहीं हुआ। हमें तो उनके बलिदान पर गर्व है। ऐसे ही बलिदानों से हिन्दू-धर्म और जाति का गौरव बढ़ता है और उसकी सेवा और वृद्धि होती है। हाँ, बिल्कुल सही है—मैं भी उन आदमियों में हूँ, जो स्वामीजी के बलिदान में अपना गौरव मानते हैं और समझते हैं कि इससे हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म का सिर संसार में ऊँचा हो गया है। पर इस बलिदान का महत्व और पवित्रता और बढ़ जाती, यदि हम हिन्दुओं का ज़रा भी हाथ, जान या अनजान में, इसकी परिस्थिति पैदा करने में न लगा होता। यदि इसके ज़िम्मेवार केवल मुसलमान ही होते तो स्वामीजी का जीवन-कार्य उनके बलिदान

के साथ ही पूरा हो जाता—हमारे द्वारा पूरा होने के लिये बाक़ी न बच रहता। निस्संदेह स्वामीजी का बलिदान हिन्दुओं को और समस्त धर्म-प्राण लोगों को बलिदान की पवित्र प्रेरणा कर रहा है—अपने प्रतिपक्षी दल के एक व्यक्ति को रोगशय्या पर पड़े हुए भी बुलाना, उसे पानी पिलवाना और उसकी गोलियों से शान्ति और वीरतापूर्वक मृत्यु की गोद में सो जाना, हिन्दू-धर्म और हिन्दू संस्कृति की उच्चता का झण्डा गगन में फहराना है। आइए, हम ऐसी ही महत्वाकांक्षा अपने जीवन में रक्खें कि हम भी पवित्र धर्म-मय-जीवन व्यतीत करते हुए, अपने समाज, देश और धर्म की अटल, अविराम सेवा करते हुए, इसी प्रकार वीर और धर्म-गति को प्राप्त हों। यही स्वामीजी महाराज के बलिदान के योग्य अपने को साबित करने का तरीक़ा है। यही उनके महान् सच्चे और अमर स्मारक की निर्दोष विधि है।

<u>संगठन जारी रहे—</u>

अब रहे स्वामीजी के अंगीकृत कार्य—शुद्धि और संगठन। मेरी राय में ये बराबर दूने वेग से जारी रहने चाहिये। सिर्फ इसी बात की ज्यादह चिन्ता और सावधानी रहनी चाहिये कि गैर जिम्मेवार या जल्दबाज कार्यकर्त्ता इसके असली रूप को बिगाड़े नहीं, इसकी शक्ति का दुरुपयोग न करें, इसकी आड़ में मुसल्मानों के प्रति विद्वेष, कटुता, अविश्वास न फैलावें। मुझे शुद्धि से भी ज्यादह जरूरी और महत्व का काम हिन्दू-संगठन मालूम होता है। शुद्धि पर यदि इतना जोर न भी दिया जाय और सारी शक्ति संगठन में ही लगा दी जाय तो हर्ज नहीं। हमें संगठन से

इतनी बातों पर खास तौर पर ध्यान देना चाहिये—(१) अछूतों, अनाथों और विधवाओ की आर्थिक कठिनाइयाँ, सामाजिक कष्ट दूर करना, जिससे वे विधर्मी बनने के लालचों में न आने पावें और (२) हिन्दू-धर्म के सिद्धान्तों और हिन्दू-संस्कृति की श्रेष्ठता, हिन्दू-जाति की महत्ता के ज्ञान का प्रचार उनमें अविरत रूप से किया जाय। हिन्दू-धर्म के मूल-भूत ग्रन्थों के सरल और सस्ते अनुवाद भिन्न-भिन्न भाषाओं में कराकर उनका प्रचार किया जाय। अशिक्षित लोगो में अच्छे, सुशील, पवित्र उपदेशको द्वारा कथा-कीर्तन के रूप में धर्मोपदेश की व्यवस्था की जाय। या तो अपने धर्म के अज्ञान के कारण या धार्मिक लोभ, या सामाजिक सुविधा से आकर्षित होकर लोग प्रायः विधर्मी होते हैं। अतएव पूर्वोक्त उपायों द्वारा खासी किलाबंदी कर देने से यह समस्या अच्छी तरह हल हो सकती है। और धर्म-भ्रष्ट हुए लोगों को वापस हिन्दू-समाज में आने का रास्ता तो अब खुल ही गया है, वह वैसा ही खुला रहना चाहिए। ऐसा करने से स्वामीजी महाराज जिस काम को अधूरा छोड़ गये, उसकी पूर्ति भलीभाँति हो सकेगी और इससे हिन्दू-मुस्लिम-एकता की राह के काँटे भी निकल जायँगे, जो कि स्वामीजी महाराज को भी इतनी प्रिय थी।

हिन्दुओ, सावधान !

एक अमंगल ध्वनि मेरे कानों पर आई है, जिसका संदेश राष्ट्रीय महासभा के सभापति के पास भी गुमनाम पत्रों के रूप में पहुँचा है और जिसका ज़िक्र तक महात्माजी को महासभा में करना पड़ा है। कुछ बिगड़े-दिल हिन्दू-भाई यह सोचते हुए

दिखाई देते हैं कि स्वामीजी के खून का जवाब मुसलमानों को क्यों न उन्ही के तरीक़े से दिया जाय? मै अपनी छोटी शक्ति के साथ उन हिन्दू-भाइयो को सावधान करना चाहता हूँ कि वे जोश में, ऐसा अविचार, ऐसा अनर्थ न करें। इस खून के बदौलत आज सारी दुनिया में जो हिन्दू-सस्कृति का यश फैल रहा है, और साथ ही मुस्लिम-संस्कृति का हिंसक अंग, जो अपने पूरे भयंकर और घृणित रूप से बीसवी सदी की दुनिया के सामने आया है, उसको जल्दी मे अपने दिल का उबाल निकालने के लिए, अपने रंज और ग़म को बुझाने के लिए, पोछ न डालो! अपनी चोट पर इतना सस्ता मरहम न लगाओ—यह जहरीला है। इससे तुम्हारी चोट थोड़ी देर के लिए ठढी होती हुई भले ही दिखाई दे, आगे चलकर वह घाव को सड़ा देगा और सारे समाज को परेशान कर देगा। इससे लोकमत हिन्दुओं की ओर से हट कर, मुसल्मानों की ओर हो जायगा और तुम्हारा पक्ष कमजोर हो जायगा। स्वामीजी के खून की ज्यादह कीमत तुम्हे देनी होगी। तुम्हे अपना जीवन स्वामीजी की वीरता, निर्भयता, पुरुषार्थ, लगन, सत्य-प्रेम का अनुकरण करने मे तथा अछूतो को उठाने, अबलाओ को जगाने, अनाथों को भाई बनाने मे लगाना होगा। किसी मुसल्मान का खून करके तुम स्वामीजी के पास जाओगे तो वे तुम्हे वहाँ से बैरंग वापस कर देगें; अपनी ज़िंदगी उनके अंगीकृत-कार्यों से लगाकर उनके सामने पहुँचोगे तो वे पीठ ठोककर शाबाशी देंगे और प्रेम से अपनी गोद मे बैठावेगे।

मैं एक बात उन जोशीले भाइयों से भी कहना चाहता हूँ—

जो हिन्दू-धर्म को विश्व-धर्म बनाने के लिए लालायित हैं, वे अगर नाम के लिए लड़ते रहेंगे तो अपने धर्म को जाति के कैद-खाने में क़ैद कर देंगे। अगर सिद्धान्त और भाव के प्रचार में जुटे रहेंगे तो संसार आदर-पूर्वक उनको शिरोधार्य करेगा।

मुसल्मानों का फ़र्ज़—

मुसल्मानों को, इस मौक़े पर, उनके फ़र्ज़ बताने का मुझे उतना हक़ हासिल नहीं। मैंने यह किताब एक हिन्दू की हैसियत से, ख़ास कर अपने हिन्दू भाइयों के लिए लिखी है। गो मैंने इसमें कितनी ही जगह एक हिन्दुस्तानी की हैसियत से भी कुछ लिखा है, ताहम मुसल्मान भाइयों से ज़्यादह कहने की हिम्मत नहीं होती, क्योंकि उन्होंने अभी ऐसी बातें सुनने के लिए अपने कान बंद कर रक्खे हैं। जिस दिन वे किसी हिन्दू का ऐसा दावा मान लेंगे, उस दिन उनकी ख़िदमत में भी दस्तबस्ता अर्ज़ किया जायगा। उनके लिए तो यहाँ मैं सिर्फ़ इतना ही कह सकता हूँ कि अगर मैं मुसल्मान होता तो इस मौके पर क्या करना अपना फ़र्ज़ समझता। मेरे दिल को अब्दुल रशीद की इस हरकत से उससे ज़्यादह चोट पहुँचती, जितनी आज हिन्दू की हैसियत से स्वामी जी के ख़ून पर पहुँच रही है। मैं अब्दुल रशीद को इस्लाम का पाप समझता और मानता कि ख़ुदा ने मुस्लिम-संस्कृति को धोने के ख़याल को मुसल्मानों के दिल में जगाने के लिए इसे दुनिया में भेजा है। मैं उसे एक भारी काफ़िर से ज़्यादह इस्लाम का दुश्मन समझता; क्योंकि काफ़िर तो काफ़िर रह कर सिर्फ़ अपना नुक़सान करता है, इस्लाम का नहीं। अब्दुल रशीद ने तो न

सिर्फ अपना नुक़सान ही किया, बल्कि इस्लाम को दुनिया की नज़र मे और गिरा दिया। उसको 'ग़ाजी' का खिताब देने वालों को मैं काफ़िर से ज्यादह बुरा समझता और अगर अब्दुल रशीद किसी साज़िश का हथियार बना हो, तो मै इस अफ़सोसनाक वाक़ए को हज़रत महम्मद साहब के फैज़ोअसर (पुण्य-प्रताप) के इम्तहान का मौक़ा समझता। मै स्वामी श्रद्धानदजी की एक यादगार बनवाने मे अपनी ताकत लगाता और वह होती—'इस्लाम-रिफ़ाम-अंजुमन'—की शकल मे, जिसका काम होता बीसवीं सदी के इल्म और जानकारियो की रोशनी में इस्लाम का रिफ़ार्म करना। मैं गदे और भद्दे तरीको से तबलीग़ करने का तरीक़ा बंद कर वाता और हिन्दुओ से अपने को हर तरह ऊचा उठाकर इस्लाम की तरक़्क़ी करने की कोशिश करता। मुसलमानो की जहालत, जनून और लठबाजी को इस्लाम की ताक़त नहीं, कमजोरी समझता और हिन्दुओं की हलीमी (नम्रता) और बरदाश्त को उनकी ताक़त। ग़र्ज़ कि मै इस मौके पर हर तरह से इस्लाम का सिर दुनिया मे ऊँचा उठाने के लिए छटपटाता। इससे ज्यादह मैं मुसल्मान भाइयों से क्या अर्ज कर सकता हूँ। मुझे तो इतना जरूर दिखाई देता है कि अगर इस्लाम में जल्द ही कोई अच्छा रिफार्मर न पैदा हुआ तो इस्लाम की ताक़त दुनिया मे दिन-दिन कम पड़ती जायगी। इस्लाम की बुनियाद अब्दुल रशीद ने ढीली कर दी है, अब जल्द ही हजरत मुहम्मद साहब के तशरीफ लाने की जरूरत है। एक साधारण मनुष्य की हैसियत से कभी-कभी मेरा जी चाहता है कि अब्दुल रशीद का शुक्रिया अदा

करूँ, मगर एक तो हिन्दू-धर्म मुझे इसके लिए मना करता है, क्योंकि वह नहीं चाहता कि प्रतिपक्षी का पतन हो, और दूसरे अपने को इस्लाम का भी खैरख्वाह मानता हूँ। इसलिए उसका शुक्रियाअदा कर के इस्लाम में और अब्दुल रशीद बढ़ाना मुनासिब नहीं समझता।

सरकार का कर्त्तव्य—

सरकार न हमारे वश की है, न उसका कर्त्तव्य हमारे वश का है। वह राष्ट्रीय होती तो ज्यादह कहने की ज़रूरत ही न पेश आती। अपने कर्त्तव्य से ज्यादह ख़याल उसे अपने स्वार्थ का है। बड़ा नाम, बड़े दावे तथा खुद स्वार्थ उसे कभी कभी इन झगड़ों में, और खास कर ऐसी वारदात मे दिलचस्पी लेने पर मजबूर करता है। क्या यह ताज्जुब और शर्म की बात नहीं है कि एक सरकार के होते हुए, दो जातियाँ बरसों इतनी लड़ती रहे, एक जाति के नेता के खून होने तक की नौबत पहुँच जाय और वह हालत को सुधारने में बिल्कुल कामयाब न हो सके? जब कि ऐसी दुर्घटनाओं और लड़ाई झगड़ों में उसका प्रत्यक्ष लाभ है, उसकी हस्ती इसी पर खड़ी है, तब उसके कर्त्तव्य का विचार करना ही वृथा है—हमें तो यह विचार करना उचित है कि वह कैसे सुधारी जाय, अपनी बनाई जाय और इसके लिए हमारा क्या कर्त्तव्य है?

राष्ट्रीय विचार वालों का कर्त्तव्य—

वे दोनों जातियों की उत्तेजना, कटुता, भय, अविश्वास और सन्देह को कम करने में पहले से भी अधिक अपनी शक्ति लगावें-

ऐसे कामों की आयोजाना करें जिससे दोनों जति के लोग एक दूसरे के संपर्क में आवे—नज़दीक़ आवें, इसका सब से अच्छा उपाय है—महात्माजी का चरखा और खादी। इसके पैग़ाम को लेकर कार्यकर्त्ता हिन्दू-मुसलमान दोनों के घरों और दिलों तक पहुँच सकता है और एकता, प्रेम, विश्वास तथा निर्भयता का सन्देश उन्हे सुना सकता है। शुद्धि-सङ्गठन और तबलीग़-तनजीम वाले वे भाई भी, जो अपनी २ जातियों का भला तो चाहते हैं, पर साथ ही एकता और स्वराज्य के भी प्रेमी हैं, इसमे राष्ट्रीय विचार वालों का हाथ बटावें और इस तरह दोनों अपने एक लक्ष्य तक पहुँचें।

अन्य हिन्दुस्तानियों का कर्तव्य—

पारसी, ईसाई, सिक्ख (यदि वे अपने को हिन्दू से पृथक् मानते हों) का कर्त्तव्य है कि वे इन हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों से यह नसीहत लें कि (१) जातियों का आपस मे लड़ना राष्ट्र को हानि है (२) जातिगत स्वार्थों को राष्ट्रीय स्वार्थों से तरजीह देना बुरा है (३) सरकार के बजाय राष्ट्रीय महासभा देश की और देश की छोटी-बड़ी जातियों की सच्ची हितचिन्तक है और (४) हिन्दु-मुसल्मानों के उत्पातों से अकेले उन्हीं को नहीं, बल्कि दूसरी जातियों की भी हानियाँ हैं; इसलिए उनको मिटाने में वे तटस्थ न रहे, बल्कि जहाँ तक हो सके प्रेम, सद्भाव, मित्रता का वायुमण्डल तैयार करने में अपनी तरफ़ से भी भरसक कोशिश करें।

उपसंहार—

यहाँ यह निबंध और मेरा कर्तव्य समाप्त होता है। मैं नहीं कह सकता कि यह चीज जैसी चाहिए, वैसी बनी या नहीं। पर मैं इतना जरूर कह सकता हूँ कि इसे जो ध्यान-पूर्वक पढ़ेगा, उसकी बहुत सी गुत्थियाँ सुलझ जायँगी और उसे अपने लक्ष्य, मार्ग और कर्त्तव्य का स्पष्ट ज्ञान हो जायगा। यदि इतना भी हुआ तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा।

हिन्दू भाई मुझे माफ़ करें, अगर इसकी कोई बात, इस समय उन्हें खटके। अपनी त्रुटियों, भूलों और दोषों को इसमें कहीं २ देख कर वे चिढ़ें और बिगड़ें नहीं। दोष दबाकर रखने से बढ़ता है, उसे तो साफ़ ही कर डालना चाहिए। बदबू फैलने के डर से हम कहाँ तक उस बदबू को छिपा रक्खेंगे और अपनी हानि करते रहेंगे। अपने दोष प्रकट करना अच्छी बात है, दूसरे के दोष खोजना बुरा है। मुसल्मान अगर हमारी बदबू पर खुश हों, तो होते रहें। उलटा मुझे तो इस बात का अफसोस है कि उनके घर में हमसे कम बदबू नहीं है। मगर उनसे कुछ कहने का मुझे कोई हक़ नहीं। हिन्दुओं के लिये इस कारण लिखा कि मैं 'उनका हूँ'—उनके दुःख से दुखित होकर ये पंक्तियाँ उन्हीं के लिये लिखी गई हैं—ये दुखी दिल के उद्गार हैं—ज्यादह क्या कहूँ—

समाप्त

लागत मूल्य पर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली

एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल, अजमेर

उद्देश्य—हिंदी-साहित्य-संसार में उच्च और शुद्ध साहित्य के प्रचार के उद्देश्य से इस मण्डल का जन्म हुआ है। विविध विषयों पर सर्वसाधारण और शिक्षित-समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी, अच्छी और सस्ती पुस्तकें इस मण्डल के द्वारा प्रकाशित होंगी।

विषय—धर्म (रामायण, महाभारत, दर्शन, वेदान्तादि) राजनीति, विज्ञान, कलाकौशल, शिल्प, स्वास्थ्य, समाजशास्त्र, इतिहास, शिक्षाप्रद उपन्यास, नाटक, जीवनचरित्र, स्त्रियोपयोगी और बालोपयोगी आदि विषयों की पुस्तकें तथा स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, टाल्सटाय, तुलसीदास, सूरदास, कबीर, बिहारी, भूषण आदि की रचनाएँ प्रकाशित होंगी।

इस मण्डल के सदुद्देश्य, महत्व और भविष्य का अन्दाज़ पाठकों को होने के लिए हम सिर्फ़ उसके संस्थापकों के नाम यहाँ दे देते हैं—

मंडल के संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज, वर्धा (२) सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दानंदजी (४) बाबू महावीर प्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) श्री जीतमल लूणिया, अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकों का मूल्य—लगभग लागतमात्र रहेगा। अर्थात् बाजार में जिन पुस्तकों का मूल्य व्यापाराना ढंग से १) रखा जाता है उनका मूल्य हमारे यहाँ केवल ।=) या ।≡) रहेगा। इस तरह से हमारे यहाँ १) में ५०० से ६०० पृष्ठ तक की पुस्तकें तो अवश्य ही दी जावेंगी। सचित्र पुस्तकों में खर्च अधिक होने से मूल्य अधिक रहेगा। यह मूल्य स्थायी ग्राहकों के लिए है। सर्व साधारण के लिये थोड़ा सा मूल्य अधिक रहेगा।

हिन्दी-प्रेमियों का स्पष्ट कर्तव्य

यदि आप चाहते हैं कि हिंदी का—यह 'सस्ता मण्डल' फले-फूले तो आपका कर्तव्य है कि आजही न केवल आपही इसके ग्राहक बनें, बल्कि अपने परिचित मित्रों को भी बनाकर इसकी सहायता करें।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली दो मालाएं और स्थायी ग्राहक होने के दो नियम

खूब ध्यान से सब नियमों को पढ़ लीजिये

(१) हमारे यहाँ से 'सस्ती विविध पुस्तक-माला' नामक माला निकलती है जिसमें वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें निकलती हैं और वार्षिक मूल्य पोस्ट खर्च सहित केवल ८) है। अर्थात् छः रुपया ३२०० पृष्ठों का मूल्य और २) डाकखर्च। इस विविध पुस्तक-माला के दो विभाग हैं। एक 'सस्ती-साहित्य-माला' और दूसरी 'सस्ती-प्रकीर्ण पुस्तकमाला'। दो विभाग इसलिये कर दिये गये हैं कि जो सज्जन वर्ष भर में आठ रुपया खर्च न कर सकें, वे एक ही माला के ग्राहक बन जावें। प्रत्येक माला में कम से कम १६०० पृष्ठों की पुस्तकें निकलती हैं और पोस्ट खर्च सहित ४) वार्षिक मूल्य है। माला से ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी, वैसे वैसे पुस्तकें वार्षिक ग्राहकों के पास मण्डल अपना पोस्टेज लगाकर पहुँचाता जायगा। जब १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँच जावेंगी, तब उनका वार्षिक मूल्य समाप्त हो जायगा।

(२) वार्षिक ग्राहकों को उस वर्ष की—जिस वर्ष में वे ग्राहक बनें—सब पुस्तकें लेनी होती हैं। यदि उन्होंने उस वर्ष की कुछ पुस्तकें पहले से ले रखी हों तो अगले वर्ष की ग्राहक-श्रेणी का पूरा रुपया यानि ४) या ८) दे देने पर या कम से कम १) या २) जमा करा देने तथा अगला वर्ष शुरू होने पर शेष मूल्य भेज देने का वचन देने पर, पिछले वर्षों की पुस्तकें जो वे चाहें, एक एक कापी लागत मूल्य पर ले सकते हैं।

(३) दूसरा नियम—प्रत्येक माला की आठ आना प्रवेश फ़ीस या दोनों मालाओं की १) प्रवेश फीस देकर भी आप ग्राहक बन सकते हैं। इस तरह जैसे जैसे पुस्तकें निकलती जावेंगी, उनका लागत मूल्य और पोस्ट खर्च जोड़ कर वी. पी. से भेज दी जाया करेंगी। प्रत्येक वी.पी. में =) रजिस्ट्री खर्च व =) वी. पी. खर्च तथा पोस्टेज खर्च अलग लगता है। इस तरह वर्ष भर में प्रवेश फीसवाले ग्राहकों को प्रति माला पौने तीन ढाई रुपया पोस्टेज पड़ जाता है। वार्षिक ग्राहकों को केवल १) ही पोस्ट खर्च लगता है।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें

क्योंकि इससे आपको पोस्ट खर्च में भी किफ़ायत रहेगी और प्रवेश फीस के ॥) या १) भी आपसे नहीं लिये जावेंगे।

(४) दोनों तरह के ग्राहकों को—एक एक कापी ही लागत मूल्य पर मिलती है। अधिक प्रतियाँ मँगाने पर सर्वसाधारण के मूल्य पर दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जाती हैं। हाँ, बीस रुपये से ऊपर की पुस्तकें मँगाने पर २५) सैंकड़ा कमीशन काट कर भेजी जा सकती हैं। किसी एक माला के ग्राहक होने पर यदि वे दूसरी माला की पुस्तकें या मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकें मँगावेंगे तो दो आना रुपया कमीशन काट कर भेजी जावेंगी। पर अपना ग्राहक नंबर ज़रूर लिखना चाहिये।

(५) दोनों मालाओं का वर्ष—सस्ता साहित्य-माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होकर दिसम्बर मास में समाप्त होता है और प्रकीर्ण-माला का वर्ष अप्रेल मास से शुरू होकर दूसरे वर्ष के अप्रेल मास में समाप्त होता है। मालाओं की पुस्तकें दूसरे तीसरे महीने इकट्ठी निकलती हैं और तब ग्राहकों के पास भेज दी जाती हैं। इस तरह वर्ष भर में कुल १६०० या ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें ग्राहकों के पास पहुँचा दी जाती हैं।

(६) जो वार्षिक ग्राहक माला की सब पुस्तकें सजिल्द मँगाना चाहें, उन्हें प्रत्येक माला के पीछे।तीन रुपया अधिक भेजना चाहिये, अर्थात् साहित्य माला के ७) वार्षिक और इसी तरह प्रकीर्ण माला के ७) वार्षिक भेजना चाहिये।

हमारे यहाँ से निकलनेवाली फुटकर पुस्तकें

उपरोक्त दोनों मालाओं के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी हमारे यहाँ से निकलती हैं। परन्तु जैसे दोनों मालाओं में वर्ष भर में ३२०० पृष्ठों की पुस्तकें निकालने का निश्चित नियम है वैसा इनका कोई खास नियम नहीं है। सुविधा और आवश्यकतानुसार पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहकों के जानने योग्य बातें

(१) जो ग्राहक जिस माला के ग्राहक बनते हैं, उन्हें उसी माला की एक एक पुस्तक लागत मूल्य पर मिल सकती है। अन्य पुस्तकें मँगाने के लिये उन्हें आर्डर भेजना चाहिये। जिन पर उपरोक्त नियमानुसार कमीशन काट कर वी० पी० द्वारा पुस्तकें भेज दी जावेंगी।

(२) ग्राहकों को पत्र देते समय अपना ग्राहक नम्बर ज़रूर लिखना चाहिये। इसमें भूल न रहे।

(३) मंडल से निकलने वाली फुटकर पुस्तकों के भी यदि आप स्थाई ग्राहक बनना चाहें तो ॥) प्रवेश फ़ीस भेज कर बन सकते हैं। जब जब पुस्तकें निकलेंगी उनको लागत मूल्य से वी० पी० करके भेज दी जावेंगी।

सस्ती-साहित्य-माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग (ले०—महात्मा गांधी)

(१) पृष्ठ सं० २७२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।⊘) सर्वसाधारण से ॥)

म० गांधीजी लिखते हैं—"बहुत समय से मैं सोच रहा था कि इस सत्याग्रह-संग्राम का इतिहास लिखूं, क्योंकि इसका कितना ही अंश मैं ही लिख सकता हूँ। कौनसी बात किस हेतु से की गई है, यह तो युद्ध का सचालक ही जान सकता है। सत्याग्रह के सिद्धांत का सच्चा ज्ञान लोगों में हो, इसलिये यह पुस्तक लिखी गई है।" सरस्वती, कर्मवीर, प्रताप आदि पत्रों ने इस पुस्तक के दिव्य विचारों की प्रशंसा की है।

(२) शिवाजी की योग्यता—(ले० गोपाल दामोदर तामस्कर एम० ए०, एल० टी०) पृष्ठ-संख्या १३२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से केवल ।) सर्वसाधारण से ।=) प्रत्येक इतिहास प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिए।

(३) दिव्य जीवन—अर्थात् उत्तम विचारों का जीवन पर प्रभाव संसार प्रसिद्ध स्विट् मार्संडन के The Miracles of Right Thoughts का हिंदी अनुवाद। पृष्ठ-संख्या १२६, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।) सर्व साधारण से ।=) चौथी बार छपी है।

(४) भारत के स्त्री-रत्न—(पाँच भाग) इस ग्रंथ में वैदिक काल से लगाकर आजतक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पातिव्रत्य-परायण, विद्वान् और भक्त कोई ५०० स्त्रियों का जीवन-वृत्तान्त होगा। हिंदी में इतना बड़ा ग्रन्थ आज तक नहीं निकला। प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मूल्य स्थायी ग्राहकों से केवल ॥।) सर्वसाधारण से १) आगे के भाग शीघ्र छपेंगे।

(५) व्यावहारिक सभ्यता—यह पुस्तक बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री

सभी को उपयोगी है, परस्पर बड़ों व छोटों के प्रति तथा संसार में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, ऐसे ही अनेक उपयोगी उपदेश भरे हुए हैं। पृष्ठ १०८, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≡) सर्वसाधारण से ।)॥ दूसरी बार छपी है

(६) आत्मोपदेश—(यूनान के प्रसिद्ध तत्वज्ञानी महात्मा एपिक के विचार) पृष्ठ १०४, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ≡) सर्वसाधारण से ।)

(७) क्या करें ?—(ले०—महात्मा टाल्सटाय) इसमें मनुष्य जाति के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक प्रश्नों पर बहुत ही सुंदर और मार्मिक विवेचन किया गया है। महात्मा गांधी जी लिखते हैं— "इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है। विश्व-प्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा" प्रथम भाग पृष्ठ २६६ मूल्य केवल ॥=) स्थाई ग्राहकों से ।≡) दूसरा भाग भी छप रहा है उसका मूल्य भी लगभग यही रहेगा।

(८) कलवार की करतूत—(ले०—महात्मा टाल्सटय) इसी नाटक में शराब पीने के दुष्परिणाम बड़ी सुंदर रीति से दिखलाये गये हैं। पृष्ठ ४० मूल्य -)॥ स्थाई ग्राहकों से -)॥

(९) जीवन-साहित्य—म० गांधी के सत्याग्रह आश्रम के प्रसिद्ध विचारक और लेखक काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राज-नैतिक विषयों पर मौलिक और मननीय लेख—प्रथम भाग पृष्ठ २१८ मूल्य ॥) स्थाई ग्राहकों से ।=) इसका दूसरा भाग भी छप रहा है।

इस प्रकार उपरोक्त नौ पुस्तकें १६८६ पृष्ठों की इस माला के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हुई हैं अब दूसरे वर्ष अर्थात् सन् १९२७ में जो जो पुस्तकें प्रकाशित होंगी उनका नोटिस कवर के चौथे पृष्ठ पर छपा है।

सस्ती-प्रकीर्ण-माला की पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग—(ले० अध्यात्म योगी श्री अश्विनीकुमार दत्त। इसमें निष्काम कर्म किस प्रकार किये जाते हैं—सच्चा कर्मवीर किसे कहते हैं—आदि बातें बड़ी खूबी से बताई गई हैं। पृष्ठ सं० १५२, मूल्य केवल ।=) स्थायी ग्राहकों से ।)

(२) सीताजी की अग्नि-परीक्षा—सीता जी की 'अग्नि-परीक्षा'

इतिहास से, विज्ञान से तथा अनेक विदेशी उदाहरणों द्वारा सिद्ध की गई है। पृष्ठ सं० १२४, मूल्य ।–) स्थायी ग्राहकों से ≡)॥

(३) कन्या-शिक्षा—सास, ससुर आदि कुटुंबी के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, वर की व्यवस्था कैसी करनी चाहिये आदि बातें, कथा-रूप में बतलाई गई है। पृष्ठ सं० ९४, मूल्य केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ≡)

(४) यथार्थ आदर्श जीवन—हमारा प्राचीन जीवन कैसा उच्च था, पर अब पाश्चात्य आडम्बरमय जीवन की नक़ल कर हमारी अवस्था कैसी शोचनीय हो गई है। अब हम फिर किस प्रकार उच्च बन सकते हैं—आदि बातें इस पुस्तक में बताई गई हैं। पृष्ठ सं० २१४, मूल्य केवल ॥–) स्थायी ग्राहकों से ।≈)॥

(५) स्वाधीनता के सिद्धान्त—प्रसिद्ध आयरिश वीर टेरेंस मेक्स-वीनी की Principles of Freedom का अनुवाद—प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रेमी को इसे पढ़ना चाहिये। पृष्ठ सं० २०८ मूल्य ॥), स्थायी ग्राहकों से ।–)॥

(६) तरंगित हृदय—(ले० पं० देवशर्मा विद्यालंकार) भू० ले० पद्म सिंहजी शर्मा—इसमें अनेक ग्रन्थों को मनन करके एकांत हृदय के सामाजिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक विषयों पर बड़े ही सुन्दर, हृदयस्पर्शी मौलिक विचार लिखे गये हैं। किसी का अनुवाद नहीं है। पृष्ठ सं० १७६, मूल्य ।≡) स्थायी ग्राहकों से ।–)

(७) गंगा गोविंदसिंह—(ले० बंगाल के प्रसिद्ध लेखक श्री चण्डीचरण सेन) इस उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में भारत के लोगों पर अँग्रेज़ों ने कैसे कैसे भीषण अत्याचार किये और यहाँ का व्यापार नष्ट किया उसका रोमांचकारी वर्णन तथा कुछ देश-भक्तों ने किस प्रकार मुसीबतें सहकर इनका मुक़ाबला किया उसका गौरव-पूर्ण इतिहास वर्णित है। रोचक इतना है कि शुरू करने पर समाप्त किये बिना नहीं रहा जा सकता। पृष्ठ २९६ मूल्य केवल ॥≈) स्थायी ग्राहकों से ।≥)॥

(८) यूरोप का इतिहास—(प्रथम भाग) छप रहा है। पृष्ठ लगभग २५० मार्च सन् १९२७ तक छप जायगा। इस माला में एकाध पुस्तक और निकलेगी तब वर्ष समाप्त हो जायगा।

हमारे यहाँ हिंदी की सब प्रकार की उत्तम पुस्तकें भी मिलती हैं—बड़ा सूचीपत्र मँगाकर देखिये!

पता—सस्ता-साहित्य प्रकाशक मण्डल, अजमेर।

यह प्रार्थना उन्हीं से है जिन्हें अपनी मातृभाषा से प्रेम हो

हिन्दी भाषा की अपील

भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रचार के लिये एक ऐसी सार्वजनिक संस्था की परमावश्यकता थी जो शुद्ध सेवा भाव से बिना किसी प्रकार के लाभ की इच्छा रखते हुए हिन्दी में उत्तमोत्तम पुस्तकें बहुत ही स्वल्प मूल्य में निकाले। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये यह सस्ता मंडल स्थापित हुआ है। **अभी तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुई है वे कितनी उत्तम और साथ ही कितनी सस्ती हैं यह साथवाले नोटिस से आपको मालूम हो जायगा।**

मंडल का आदर्श

अभी हमने १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तक की पुस्तकें स्थाई ग्राहकों को देना निश्चय किया है। पर हमारा आदर्श है कि १) में ८००) से १००० पृष्ठों तक की पुस्तकें हम निकाल सकें। यदि यह दिन आगया जो कि अवश्य आवेगा तो हिन्दी भाषा की बडी सेवा हो सकेगी।

मण्डल के लाभ और हानि का सवाल

मण्डल सिर्फ इतना ही चाहता है कि उसके काम करनेवाले कार्य्यकर्ताओं का वेतन निकल आवे और वह इस तरह स्वावलम्बी होकर चिरकाल तक हिन्दी की सेवा कर सके, बस यही उसका स्वार्थ है। अभी जो १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तक की पुस्तकें देने का निश्चय किया है उसमें जबतक **चार हजार ग्राहक न बन जावें तबतक मण्डल को बराबर हानि होती रहेगी।** इतने ग्राहक हो जाने पर १) में उपरोक्त पृष्ठों की पुस्तकें देने से मण्डल को हानि न उठानी पडेगी। **ज्योंही चार हजार से ऊपर ग्राहक बढ़ने लगे वैसे ही पृष्ठ संख्या भी बढ़ने लगेगी।**

मण्डल के जीवन का आधार

उसके स्थाई ग्राहक हैं—गुजरात जैसे छोटे से प्रांत में वहा के सस्तुं-साहित्य-कार्य्यालय के सात हजार स्थाई ग्राहक हैं। इसीलिये आज उस संस्था से कई उत्तम ग्रन्थ स्वल्प मूल्य में निकल गये हैं। उस हिसाब से हिन्दी में तो बीसियों हजार ग्राहक हो जाना चाहिये।

(पीछे देखिये)

आपसे विनीत प्रार्थना

कि हम स्थाई ग्राहकों को लागत मूल्य में पुस्तकें दे रहे हैं ऐसी अवस्था में क्या हम यह आशा नहीं कर सकते कि आप इसके स्थाई ग्राहक बनकर इस सेवा के कार्य्य में हमारा हाथ बटावेंगे। आपको तो यह लाभ होगा कि कुछ वर्षों में ही आपके घर में उत्तम चुनी हुई सब विषयों की पुस्तकों का बहुत ही कम कीमत में पुस्तकालय हो जायगा और हमें आपके ग्राहक बनने से बड़ी मदद मिलेगी। **दोनों मालाओं का पोस्टेज सहित कुल ८) वार्षिक है जिसमें कि ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें घर बैठे आपको मिल जावेंगी।** आशा है आप हमारी इस उचित प्रार्थना को योंही नहीं टाल देंगे।

अन्तिम निवेदन

(१) यदि किसी कारण से आप ग्राहक न बन सकें तो कम से कम एक दो ग्राहक बनाकर ही आप हमारी सहायता कर सकते हैं। आपके मित्रों या सम्बन्धियों आदि में एक दो को तो आग्रह करके आप जरूर ही ग्राहक बना सकेंगे। यह तो निश्चय बात है। सिर्फ आपके हृदय में हिन्दी के लिये सच्चा प्रेम होना चाहिये।

लोगों की उदासीन वृत्ति

जब हम, लोगों के पास अपने विज्ञापन भेजते हैं तो बहुत कम लोग उन पर ध्यान देकर ग्राहक बनते हैं पर जब हम उनके घर पर सामने चले जाते हैं तो वे जरूर ग्राहक बन जाते हैं यह हमारा खुद का अनुभव है। इसका कारण केवल उनका आलस्य या उदासीन वृत्ति है। घर घर जाने में कितना रुपया और कितनी शक्ति खर्च होती है यह आप अनुमान कर सकते हैं। आप यदि इस ओर ध्यान दें और सहायता के भाव से प्रेरित हों तो मण्डल की यह शक्ति और द्रव्य बच कर हिन्दी की अधिक सेवा में लग सकता है।

आशा है आप हमारी अपील को व्यर्थ न फेंक देंगे और ऐसा समझ कर कि हम आपके सामने ही अपील कर रहे हैं, कम से कम एक वर्ष के लिये जरूर ग्राहक बनेंगे।

विनीत—जीतमल लूणिया, मन्त्री,
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर।